ISSN: 2583-391X

सोच भारत की

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

वर्ष 6, अंक 2, वि. सं. 2082
अप्रैल – जून, 2025, (युगाब्द – 5127)

Quarterly peer-reviewed journal

सोच भारत की

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

परामर्श

श्री अजेय कुमार, स्वतंत्र चिन्तक, दिल्ली

प्रो. योगेश सिंह, कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. एस. पी. बंसल, कुलपति, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

प्रो. बृजेश कुमार पाण्डेय, रेक्टर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. सुषमा यादव, प्रति कुलपति, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़

प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा, पूर्व कुलपति, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा

प्रो. रंजना अग्रवाल, निदेशक, सीएसआईआर-राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं नीति अनुसंधान संस्थान, दिल्ली

प्रमुख प्रबंधक

श्री विनोद शर्मा 'विवेक', प्रमुख, इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र, नयी दिल्ली

प्रधान संपादक

प्रो. राजेंद्र कुमार पाण्डेय, आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

संपादक

डॉ. कुमार सत्यम, सहायक आचार्य, समाज कार्य विभाग, डॉ भीम राव अंबेडकर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक समिति

प्रो. राकेश कुमार पाण्डेय, आचार्य, भौतिकी विभाग, किरोड़ी मल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. सुनील कुमार कश्यप, आचार्य, वाणिज्य विभाग, शहीद भगत सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. राम निवास सिंह, प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार, दिल्ली

डॉ. सोनिया, सहायक आचार्य, संस्कृत, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, दिल्ली

डॉ. विकास शर्मा, सहायक आचार्य, संस्कृत, पाली, प्राकृत और प्राच्यभाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

श्री दीपक सिंह, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

मीडिया आई. टी. एवं प्रचार-प्रसार

डॉ. मनीष कुमार सिंह, सहायक आचार्य, संगणक विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुख़र्जी महाविद्यालय, दिल्ली

डॉ. दीपक मित्तल, सहायक आचार्य, संगणक विज्ञान विभाग, दीन दयाल उपाध्याय महाविद्यालय, दिल्ली

श्री मनोज कुमार, सहायक आचार्य, यांत्रिकी विभाग, भास्कराचार्य महाविद्यालय, दिल्ली

पंजीकृत कार्यालय

एस 44-45, दुकान नंबर 1,
परमपुरी, उत्तम नगर,
नई दिल्ली – 110059
Email: ipakendra@gmail.com

संदर्भ पुस्तकालय

1/7, श्रीराम कुटीर, द्वितीय तल,
चाणक्य प्लेस, C-1, जनक पुरी,
नई दिल्ली - 110059
सचल दूरभाष: 981149924, 9868084938

संपादकीय

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श का यह अंक समकालीन भारत के वैचारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और तकनीकी विमर्श को एकसमग्र दृष्टि से प्रस्तुत करता है। इस अंक में प्रकाशित शोध लेख, निबंध, पुस्तक समीक्षा और विविध रचनाएँ भारतीयपरंपरा और आधुनिकता के संवाद को सशक्त रूप से सामने लाती हैं।

डॉ. चन्द्रेश बी. मेहता का शोध लेख राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सामाजिक योगदान का तथ्यात्मक और अनुभवजन्यविश्लेषण प्रस्तुत करता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, आपदा प्रबंधन और आत्मनिर्भरता के क्षेत्रों में संघ की भूमिका को सर्वेक्षणआधारित अध्ययन के माध्यम से स्पष्ट किया गया है, जिससे जमीनी स्तर पर सामाजिक संगठनों की उपयोगिता रेखांकितहोती है।

प्रो. पवन कुमार शर्मा का लेख ऋग्वेद में राजधर्म, राजा और शासन की अवधारणा को सूत्रात्मक रूप में विवेचित करताहै। यह अध्ययन प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन की गहराई को उजागर करता है और यह दर्शाता है कि लोककल्याण, न्याय और उत्तरदायित्व की अवधारणाएँ वैदिक काल में भी सुदृढ़ थीं।

डॉ. राकेश आर्य का लेख 2014 के बाद भारत में राष्ट्रत्व और राष्ट्रभाव के उभार को सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में समझाता है।इसमें भारतीय और पाश्चात्य चिंतकों के विचारों के माध्यम से राष्ट्रवाद की विभिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं।

डॉ. सुमित कुमार ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के संदर्भ में आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की दृष्टि से डॉ. केशव हेडगेवार के विचारोंका विश्लेषण किया है, जबकि डॉ. राहुल प्रसाद का लेख नरेंद्र कोहली को रामकथा के आधुनिक शिल्पकार के रूप मेंप्रतिष्ठित करता है।

अंतर्दृष्टि खंड में स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दर्शन और भारत में इंडस्ट्री 4.0 पर केंद्रित लेख समकालीन चुनौतियों औरअवसरों की ओर संकेत करते हैं। पुस्तक समीक्षा और विविध रचनाएँ इस अंक को और समृद्ध बनाती हैं।

कुल मिलाकर, यह अंक शोधार्थियों, शिक्षकों और जागरूक पाठकों के लिए विचारोत्तेजक सामग्री प्रदान करता है औरभारतीय बौद्धिक परंपरा को समकालीन संदर्भों से जोड़ने का सार्थक प्रयास है।

संपादक

अनुक्रमाणिका

पृष्ठ

संपादकीय i

शोध-पत्र

- **Contributions of Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) to the Social Sector** 2-12
  Dr. Chandresh B Mehta
- **ऋग्वेद में राजधर्म, राजा और राज्यशासन सम्बन्धी सूत्र** 13-17
  Prof. Pawan Kumar Sharma
- **The Ascendancy of Nationhood (Rashtratv) and Nationalism (Rashtrabar) in Bharat** 18-33
  Dr. Rakesh Arya
- **सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की दृष्टि में डा केशव हेडगेवार** 34-42
  Dr. Sumit Kumar
- **रामकथा के आधुनिक शिल्पकार: नरेंद्र कोहली** 43-50
  Dr. Rahul Prasad

अंतर्दृष्टि

- **स्वामी विवेकानन्द के विचारों में निहित भारतीय शिक्षा दर्शन के तत्त्व** 52-60
  Dr. Kamna Vimal Sharma
- **भारत में इंडस्ट्री 4.0: नवाचार और विकास का युग** 61-65
  Dr. Manish Kumar Singh

पुस्तक समीक्षा

- **India, Bharat and Pakistan** 67-70
  Deepak Singh

विविधा

- **बांध कर इतना मुसाफिर** 72
  Bhawna Sharma

शोध-पत्र

ISSN: 2583-391X

Contributions of Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) to the Social Sector

Dr. Chandresh B. Mehta
Assistant Professor,
Shree J.D. Gabani Commerce College &
Shree SAS College of Management,
Gujarat

Introduction

The Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS), founded in 1925 by Dr. Keshav Baliram Hedgewar, is one of the largest voluntary organizations in the world. The Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) is one of India's most prominent socio-cultural organizations, established with the aim of uniting and strengthening Hindu society while instilling discipline and cultural pride. Over the decades, the RSS has expanded its activities beyond its initial focus to include extensive social service initiatives in areas such as education, health, social, and self-reliance programs. Its contributions during crises, such as the COVID-19 pandemic, have further highlighted its role in grassroots mobilization and community support.

This research paper examines the public perception of the RSS's social sector contributions, drawing insights from survey responses collected from individuals across various demographics, including students, professionals, and educators. The survey explores awareness of the RSS's social work, its impact on marginalized communities, and the effectiveness of its volunteer-driven initiatives during emergencies. Additionally, it assesses opinions on the organization's inclusivity, self-reliance programs, and overall service performance. The research explores awareness of the RSS's initiatives, opinions on its impact during the pandemic, and evaluations of its service performance.

The findings aim to provide insights into how the RSS's social work is perceived by different segments of society, the effectiveness of its initiatives, and the extent of its influence in fostering self-reliance and communal harmony. By analysing these responses, the paper seeks to contribute to a broader understanding of the RSS's role in India's social sector and its implications for community development and national integration.

Literature Review

Chitranjali Negi (2023), "Shakha to Society: Unveiling the RSS Influence in Modern India: A Critical Analysis", Research paper. The research paper by Chitranjali Negi provides a comprehensive analysis of the Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS), exploring its historical roots, ideological foundations, organizational structure, and multifaceted influence on modern Indian society. The paper notes the adaptability of this system, including specialized branches like IT Milan for tech professionals, which reflects the organization's ability to modernize while retaining core values. This paper highlights the RSS has actively engaged in social service, disaster relief (e.g., 2001 Gujarat earthquake, 2004 tsunami), and educational initiatives (Seva Bharati). These efforts are documented in primary sources like news archives and NGO reports, though critics argue they may serve ideological agendas.

Narender Thakur and Vijay Kranti (2023), About RSS, Book. This literature review based on the book About RSS (edited by Narender Thakur and Vijay Kranti). The book About RSS outlines the ideological foundations and societal role of the Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS), portraying it as a socio-cultural organization committed to nation-building through selfless service. It emphasizes the Sangh's contributions in fields like education, character-building, and social cohesion, while addressing common misconceptions and criticisms. The text highlights the RSS's inclusive definition of "Hindu" and its vision of a unified, spiritually rooted Indian society.

Dr. Suresh Vadranam (2023), "Retrospect and Prospect of Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) in Nation Building", Research paper. This study traces the RSS's evolution from its inception in 1925 to a nationwide cultural and social movement aimed at uniting Hindu society. It emphasizes the RSS's extensive contributions in times of national crisis particularly during the Partition, Emergency, and natural disasters through disciplined volunteer service and relief work. The paper critically explores both the organization's ideological roots in Hindutva and its perceived role in shaping modern Indian nationalism and politics.

Pranay Kumar Tiwari and Dr. Alok Kumar (2023), "The Organisation of a Social Movement: The Case Study of Rashtriya Swayamsevak Sangh Movement in Bharat", Research paper. This study views the RSS not just as an organization but as a structured social movement focused on "man-making" (Vyakti Nirman) for national reconstruction. It highlights the RSS's decentralized yet disciplined organizational framework, its unique training system through

shakhas and pracharaks, and its expansive social outreach, including SC/ST welfare, women's empowerment, and disaster relief. Grounded in sociological theory, the paper presents RSS as a grassroots force shaping both individual character and collective national consciousness.

Pranay Kumar Tiwari and Dr. Alok Kumar (2023), "The Organisation of a Social Movement: The Case Study of Rashtriya Swayamsevak Sangh Movement in Bharat", Research paper. This paper analyzes the RSS as a well-organized social movement rather than just an ideological body, highlighting its unique structure based on volunteerism, daily shakhas, and extensive training. It explores how the RSS fosters national integration and character-building (Vyakti Nirman) through educational, cultural, and social service activities. The empirical data from 200 members affirms the RSS's perceived role in promoting unity, aiding marginalized communities, and responding effectively during national crises.

Dr. Satish L. Chaple 1 and Dr. Vivek M. Diwan (2024), "Role of RSS in nation-building through social contribution", Research paper. According to Chaple and Diwan, the RSS's contributions span several domains including education, rural development, disaster relief, healthcare, and social harmony. Its ideological foundation is rooted in selfless service (seva), with character-building and discipline at the core of its social initiatives.

Research Gap:

Above review of literature shows that several studies have explored the ideological foundation and selective social activities of the RSS, such as education, health and disaster relief. There is limited empirical research that holistically evaluates RSS's current contributions across the broader social sector. Public perception, regional impact, and outreach to marginalized communities remain under-researched. Therefore, this study aims to fill the gap by systematically examining the RSS's present-day role in the social sector and nation building. Hence the researcher has decided to study on 'The Contributions of Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) to the Social Sector'.

Research Methodology

Research Statement

"The Contributions of Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) to the Social Sector."

Significance of the Study

This study aims to provide a balanced assessment of the RSS's social sector activities. It explores public perception and the real-world impact of these efforts. The findings will contribute to the academic understanding of civil society organizations in India. The research will also serve as a valuable resource for policymakers, social workers, and scholars. It highlights the link between voluntary service and ideological movements.

Objectives of the Study

The objectives of this study are:

1. To examine the RSS's contributions to the social sector.
2. To assess public awareness and perception of the social contributions of RSS.
3. To understand trust, inclusivity, and impact of RSS's social work across communities.
4. To determine the public's willingness to join RSS or promote similar models.

Research Method

Research Design: Descriptive and exploratory in nature.

Primary Data: Collected through a structured Google Form survey titled "Contributions of RSS to the Social Sector", including both qualitative and quantitative questions.

Secondary Data: Reviewed from books, academic papers, journals, and published reports on the RSS's organizational structure, ideology, and documented social service initiatives.

Sample Size: 129 respondents who are familiar with RSS or have witnessed RSS social work or who are not familiar with RSS of Surat Mahanagar.

Sampling Technique: Purposive non-probability sampling.

Data Analysis: Percentage distribution and graphical representation were used to analyse survey responses compiled in excel format.

Limitation of the Study

1. The data is limited to respondents accessible via online surveys, which may not represent the entire population. The present study has collected the data of Surat Mahanagar and other cities of Gujarat only.
2. Respondent bias and subjectivity may influence the perception-based responses.

Scope of the Study

The research focuses on the perceived social impact of the RSS in areas such as education, health, disaster relief, environment, caste-based outreach, and women's empowerment, based on the feedback of general respondents. Similar research may be conducted for Gujarat and other states of Bharat and also for different work areas of RSS.

Data Analysis

The present study, the researcher has collected primary data through structured Google Form survey.

Overview of the Survey

Total Respondents: 129

Geographical Coverage: Predominantly from Gujarat (e.g., Ahmedabad, Vadodara, Surat, Rajkot)

Demographics:

Students: 34.9% (45 Respondents)

Professionals/ Job: 27.9% (36 Respondents)

Job: Professor: 24% (31 Respondents)

Job: Teacher: 10.1% (13 Respondents)

Retired: 3.1% (4 Respondents)

Awareness and Engagement

Awareness of RSS: 87.6% of respondents are aware of the RSS.

Awareness of RSS Social Work: 82.2% are familiar with RSS's community and social service initiatives.

Interested in joining RSS

Number/ variables	Yes	No	Member of RSS
1. Percentage	45%	14.7%	40.3%
2. Respondents	58	19	52

This reflects a strong willingness to engage with the organization among both youth and working professionals.

Performance Evaluation of RSS's Social Service

Respondents rated RSS's social service performance on a scale of 1 to 5:

Rating	Percentage	Respondents
Excellent (5)	66.7 %	86
Good (4)	20.9%	27
Average (3)	9.3%	12
Poor (2)	0.80(<1%)	01
Very Poor (1)	2.3%	03

It has been concluded that over 85 % rate RSS's work as Good to Excellent.

Respondents (Public) Opinion on RSS's Social Contributions

Points	Yes	No
Social service work of RSS has had a positive impact on society	121	08
personally witnessed or benefited from any service activity conducted by the RSS	102	27
RSS's work in health, education, or disaster relief has helped marginalized communities	118	11
presence of RSS volunteers during crises (like natural disasters or pandemics) make a meaningful difference	119	10
RSS volunteers work selflessly for the society	119	10
RSS gives equal service to all, regardless of caste or religion	117	12
RSS contributed to improving self-reliance among the poor or underprivileged	118	11
service work like that of RSS be promoted more widely across the country	122	07

The above data reveals an overwhelmingly positive public perception regarding Rashtriya Swayamsevak Sangh's (RSS) role in the social sector. Below is a breakdown and interpretation of each data point:

Positive Social Impact

121 respondents (93%) believe that the RSS has had a positive impact on society through its social service work.

This high percentage suggests strong public approval of RSS's grassroots outreach and community initiatives.

Direct Experience or Observation

102 respondents (79%) have personally witnessed or benefited from RSS service activities, indicating a substantial level of direct engagement or visibility of their work.

The relatively high number of firsthand experiences strengthens the credibility of positive public opinion.

Support for Marginalized Communities

118 respondents (91%) agree that RSS's work in health, education, and disaster relief has helped marginalized communities.

This suggests that the RSS's efforts are not only visible but are also seen as inclusive and oriented toward social equity.

Crisis Response

119 respondents (90%) feel that the presence of RSS volunteers during crises (like natural disasters or pandemics) makes a meaningful difference.

This reinforces the organization's reputation for swift, disciplined volunteerism in times of national need.

Selfless Service

119 respondents (90%) also believe that RSS volunteers work selflessly, reflecting strong trust in the motive and dedication of its workers.

Equality in Service Delivery

117 respondents (88%) agree that RSS provides equal service regardless of caste or religion, addressing a commonly debated aspect of RSS's ideological leanings.

This suggests a generally inclusive perception of the organization among respondents.

Empowerment of the Poor

118 respondents (91%) believe that RSS has helped improve self-reliance among the poor or underprivileged.
This highlights the perceived long-term value and empowerment focus of RSS initiatives.

Promotion of Similar Models
122 respondents (94%) support the idea that service work like RSS's should be promoted more widely across the country.
This reflects not only approval but also aspirational endorsement of the RSS model as a template for national service.

COVID-19 Service Contribution Analysis of RSS

Points	Yes	No
Food and Ration Kit Distribution	120 respondents (93.02%)	9 respondents (6.98%)
Blood and Plasma Donation Camps	117 respondents (90.70%)	12 respondents (9.30%)
Shelter Facilities During Lockdown	120 respondents (93.02%)	9 respondents (6.98%)
Support to Hospitals (Masks, PPE Kits, Sanitizers)	116 respondents (89.92%)	13 respondents (10.08%)
Overall Service During COVID-19	121 respondents (93.80%)	8 respondents (6.20%)

The above data indicates overwhelmingly positive public perception of the RSS's COVID-19 relief efforts, with over 89% of respondents affirming each major service. Food distribution and shelter facilities received the highest approval (93.02%), reflecting strong community impact. Overall, 93.8% acknowledged the RSS's contribution during the pandemic, suggesting broad recognition of its service initiatives.

RSS: Sewa

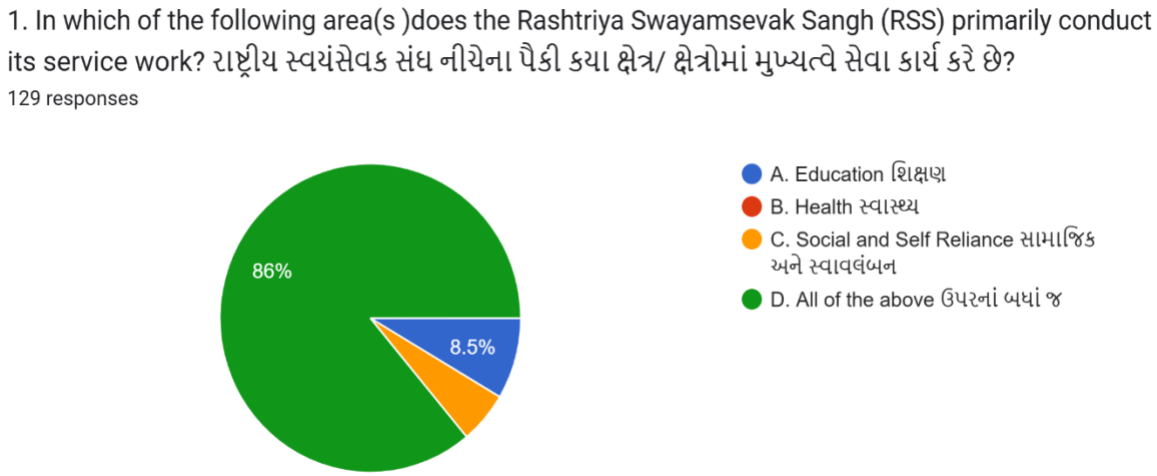

The above chart indicates that most participants (86%) believed RSS conducted sewa activities in four areas, such as education, health, social and self-reliance.

Major Social Contributions of RSS:

1. Education and Character Building:

The RSS has significantly contributed to education through its affiliates like Vidya Bharati, Ekal Vidyalaya, and Shishu Mandirs. These institutions focus on value-based learning, reaching rural and tribal areas, and promoting patriotism. RSS also emphasizes character-building through daily shakhas, linking personal growth with nation-building. Pathdan Kendras run by RSS-affiliated groups offer supplementary education, especially in underserved areas. They focus on academic support, moral values, and cultural awareness among students.

2. Rural Development and Self-Reliance:

The RSS promotes rural development and self-reliance through efforts like the Deendayal Research Institute, which champions organic farming, education, and self-employment. Its model villages highlight sustainable living. Programs like Gram Vikas Yojana and farmer empowerment initiatives focus on sanitation, water conservation, and vocational training to uplift rural communities.

3. Healthcare and Public Welfare:

RSS and its affiliates play a vital role in healthcare for the underprivileged. Seva Bharati operates hospitals, mobile clinics, and blood donation drives, especially in underserved areas.

Initiatives like free medical camps, cataract surgeries, and maternal health programs, along with services like Arogya Mitra and naturopathy centres, ensure accessible and holistic care.

Conclusion and Suggestions

Findings

The research findings indicate a highly favourable perception of the Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) among the surveyed respondents. A significant majority (87.6%) are aware of the RSS, and over 82% are informed about its social service initiatives. More than 85% of participants rate RSS's social contributions as either good or excellent. Engagement levels are especially strong among students and professionals, with a combined 85.3% either willing to join or already affiliated with RSS. Furthermore, over 90% of respondents believe that RSS has made meaningful contributions in health, education, disaster relief, women's empowerment, and social equality. Notably, during the COVID-19 pandemic, the RSS's actions were seen as critical by more than 93% of respondents, who acknowledged food distribution, shelter, hospital support, and blood donation drives as key interventions.

Suggestions

To further enhance its social outreach, the RSS may consider expanding awareness campaigns in rural and underserved regions where knowledge of its work may still be limited. It should also continue to develop educational and vocational programs, especially targeted at youth and women, to promote leadership and self-reliance. Developing structured youth engagement programs—such as leadership workshops, internships, and value-education modules—can channel student interest into sustained participation. The RSS should also focus on documenting its service activities through academic case studies and digital platforms to improve visibility, accountability, and scholarly engagement. Collaborations with governmental and non-governmental bodies in health, education, and disaster management would allow for scalability and inclusiveness. The promotion of similar volunteer-based service models inspired by the RSS approach can help foster a more cohesive and resilient national community. Finally, scaling women's empowerment projects and formalizing alliances with educational and healthcare institutions will broaden inclusivity and amplify RSS's social-sector contributions.

The data suggests that the Rashtriya Swayamsevak Sangh has established itself as a pivotal organization in Bharat's social sector, combining ideological commitment with grassroots action. Its broad-based recognition and credibility stem not only from long-standing service but also from its rapid and effective mobilization during emergencies like the COVID-19 pandemic. Respondents across diverse professional and educational backgrounds perceive the RSS as an inclusive, disciplined, and value-driven body that contributes actively to national unity, upliftment of marginalized communities, and cultural integrity. The RSS model, rooted in selfless service and organizational rigor, resonates strongly with the public and is viewed as both relevant and replicable in the modern social landscape of India.

References

- Sharda, R. (2018). RSS 360 Degree: Demystifying Rashtriya Swayamsevak Sangh. New Delhi: Bloomsbury. Wilkinson, P. (1971). Social Movement. London: Pall Mall Press.
- Andersen, Walter K., & Damle, Shridhar D. (2019). The RSS: A View to the Inside. Penguin Random House
- https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=4675280
- https://www.researchgate.net/publication/390917428_ROLE_OF_RSS_IN_NATION-BUILDING_THROUGH_SOCIAL_CONTRIBUTION
- https://www.journalofpoliticalscience.com/uploads/archives/5-2-24-181.pdf
- https://www.researchgate.net/publication/382591078_THE_ORGANISATION_OF_A_SOCIAL_MOVEMENT_THE_CASE_STUDY_OF_'RASHTRIYA_SWAYAMSEVAK_SANGH'_MOVEMENT_IN_BHARAT
- Official website of RSS - www.rss.org
- Seva Bharati Reports - www.sevabharati.org

ऋग्वेद में राजधर्म, राजा और राज्यशासन सम्बन्धी सूत्र

प्रोफेसर पवन कुमार शर्मा
परीक्षा नियंत्रक,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

जैसाकि सभी को विदित है कि विश्व के साहित्य में ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें सूत्र रूप में समाज, राज्य, राजा, ऋषि, युद्ध, व्यवसाय उत्पादन, कृषि, शिल्प, विज्ञान आदि से सम्बन्धित विषयों का वर्णन उपलब्ध है; किन्तु ये सभी विषय अध्येताओं के सम्मुख विस्तार तो छोड़िये संक्षेप में भी कभी प्रस्तुत नहीं किए गए। वेदों को या तो कर्मकाण्ड से सम्बन्धित माना गया या इनके आलोचकों ने इन्हें चरावाहों के गीतों के रूप में अकादमिक जगत में स्थापित कर दिया। पाश्चात्य विद्वानों ने भी इनका उपयोग अपने निहितार्थे की पूर्ति के लिए ही किया। फलत:, जो इनका मूल था वह अकादमिक जगत से सदैव, विशेषकर विगत 250 वर्षों से तो छिपाकर ही रखा गया। इस प्रकार से जो इनका महत्व था वह समाज में स्थापित न हो सका। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इस दृष्टिकोण से कुछ कदम उठाए हैं। परिणामत:,भारतीय परिप्रेक्ष्य को अकादमिक जगत के सम्मुख प्रस्तुत करने के प्रयास प्रारंभ हुए हैं। उसी को दृष्टिगत रखकर यह शोधपरक सामग्री अध्येताओं के लिए प्रस्तुत की जा रही है। जिससे वे वेदों की व्यापकता और गूढ़त्व से परिचित हो सकें। इस सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए ऋग्वेद के श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी के भाष्य को आधार बनाया गया है। और, सूत्र के सम्मुख उसके मण्डल, सूक्त और मन्त्र को सुगम सन्दर्भ के लिए कोष्ठक में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ऋग्वेद में स्थान—स्थान पर अग्नि, वरूण, इन्द्र आदि को राजा के रूप में भी निरूपित किया गया है और उसी अनुरूप उनसे प्रार्थना, अपेक्षा और व्यवहार के प्रदर्शन की विनती या निवेदन किया गया है। उन्हीं सब सूत्रों की व्याख्या को यहां पर प्रस्तत किया जा रहा है। इन सूत्रों में राजा के गुण, भूमिका और व्यवहार पर प्रकाश डाला गया है। इन्द्र के स्वभाव के विषय में कहा गया है कि इन्द्र मित्र है और युद्ध में मरूत उसके सहयोगी है। (3/51/9) राजा को अक्षय धन का स्वामी माना गया है। (9/5/88) (क्योंकि, कराधान से उसका कोष वृद्धिंगत होता रहता है) प्रजा के शोषणकारी जनों के वंशनाश का उल्लेख है। (1/21/5) यानि, राजा प्रजा का शोषक नहीं अपितु पोषक होगा। मध्यकाल में तुलसी ने इसी बात को लोक भाषा में कहा है कि 'जासु राजप्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवश्य नरक अधिकारी'। राजा को राजन या राजा इसीलिए कहा गया था कि वह प्रजारंजन यानि प्रजा का सुखदाता है। फिर वज्रधारी यानि इन्द्र शत्रुओं पर आक्रमण करे। (1/174/5) राजा की शस्त्रधारण की महत्ता इसी में है। राजा की तुलना बैल से करते हुए शत्रु नाशक माना गया है जिस प्रकार से बैल अपने शत्रु के नाश तक शान्त नहीं बैठता वैसे ही राजा भी हो। (8/1/2) राजा को कपटरहित और जनता का रक्षक माना गया है। (1/174/10) राजा को जनहितकारी और प्रजा के लिए सुखों की वर्षा करने वाला हो।(1/177/1) राजा की तुलना प्यासे को जल देने वाले से करते हुए प्रजा को शक्ति प्रदाता से की गई है। (1/175/6) (जिस प्रकार प्यासे में जल जीकर प्राणों का संचार हो जाता है वैसे ही राजा की कृपा से प्रजा की शक्ति भी बढ़ जाती है) राजा अपनी शक्ति के बल पर सर्वत्र

घूमता है और पापियों (विहितकर्मों के पालन न करनेवालों) को मारता है। (5/37/4) राजा से रक्षक शक्ति का संचय करने की अपेक्षा की गई है। (1/40/8)

प्रजा हितैषी राजा को दीर्घकाल तक राज्य करने वाला बताया गया है। (3/55/21) राजा छोटे—बड़े युद्धों को जीतता है। (5/37/5) हे इन्द्र! तुम शत्रुवध करते हुए बढ़ते हो। शत्रु तुम्हारे पास नहीं आ पाता। ये इन्द्र की शक्ति का परिचायक मन्त्र है। (1/176/1) हे इन्द्र! तूने नदी के समान जन प्रवाहों को (युद्ध में) प्रवाहित किया। (1/174/9) हे इन्द्र! तूने जल को प्रवाहित किया। (1/174/2) इस प्रकार इन्द्र को जल और जन को प्रवाहमान रखने वाला निरूपित किया गया है। आगे राजा को सत्य और असत्य का विवेचक माना गया है। (10/124/5) राजा को अपने ओज से शत्रुओं का नाश करने वाला माना गया है। (1/55/6) राजा प्रजा का पोषण करके प्रजा में निवास करता है। (5/37/4) यानि राजा के क्रियाकलाप (सद्) ही उसको प्रजा के मध्य स्थापित करते हैं अतएव राजा को तदनुरूप ही कार्य करना चाहिए। राजा बैल से तुल्य शत्रुजनों को जीतता है ऐसा माना गया। (8/1/2) इन्द्रकृपणों को मार देता है। (1/174/6) यहां कृपण से अभिप्राय संभवत: उन धनिकों से रहा होगा जिनका धन समाज कल्याण में नहीं लगता होगा। तो ऐसे धनिक कृपणों की श्रेणी में माने गए होंगे और वधनीय हुए। राजा को युद्ध में सैनिकों का नेतृत्व करना चाहिए। यह मन्त्र उसका संकेतक है। इसमें कहा गया है कि वीर इन्द्र युद्ध में अपने सैनिकों के साथ विजयी होता है। (1/178/3) हे इन्द्र! प्रजा को सुख देने से तुम्हारी कीर्ति और प्रशंसा है। (8/45/33) यानि, प्रजारंजक राजा ही कीर्तिवर्धक और प्रशांसा का पात्र होता है।

राष्ट्र के स्वरूप का विकास होने लगा है तभी तो ऋषि इन्द्र के साथ अन्यों को भी राजा मानते हुए प्रार्थना करता है कि हे इन्द्र! तू और देवगण हमारे राजा है। तुम प्रजा की रक्षा करो। (1/174/1) हे इन्द्र! तू सज्जनों का पालक और हमारा तारक है। (1/174/1) यानि, श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार 'परित्राणाय साधुनाम, विनाशाय च दुष्कृताम' की पूर्व प्रस्तुति का उल्लेख। आगे इन्द्र के गुणों का उल्लेख करते हुए उसे सच्चा आश्रयदाता और शक्तिदाता कहा गया है। (1/74/1) इन्द्र को धनदाता भी कहा गया है। (1/175/3) कटु भाषा में शत्रुओं का विनाशक है इन्द्र।(1/174/2) हे इन्द्र! तेरे छोटे कार्य का भी पृथ्वीं पर बहुत प्रचार होता है। (8/45/32) यानि, राजा के द्वारा सम्पन्न छोटे—छोटे कार्य भी महत्वपूर्ण और प्रचारात्मक ही हैं। धनवान इन्द्र (राजा) धन का दान करता है। (4/17/8) इन्द्र सोमपान भी है (शक्तिवर्धक पेय) और उससे यह अपेक्षा है कि वह दान करता रहे। (1/35/7) हे इन्द्र! तेरे कार्य अत्यन्त तेजोमय है। (1/175/5) राजा (सोम) कपटियों को (क्षत्रियों) को क्षमा नहीं करता। (7/104/13) राजा को धर्म कार्यों का सहयोगी मानते हुए उससे उनमें विघ्न न डालने की प्रार्थना की गई है। (1/78/2) जिस राज्य में धर्म है वहां राजा दुखित नहीं होता। (5/37/4) यानि, धर्म राजा के सुख का भी हेतु है। आगे फिर वर्णन है कि महायुद्ध में इस राजा को कोई न रोक सकता है और न ही हरा सकता है। (1/40/8) इन्द्र के पराक्रम का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि इन्द्र ने कठिन युद्ध में कटुभाषी शत्रु को मारा।(1/17/47)

इन्द्र के स्वरूप के विषय में लिखते हैं कि वह शत्रुपुर नाशक, वृत्रहन्ता, और विजयी सेना वाला है। (3/54/15), इन्द्र शत्रु के नगरों का विध्वंसक है। (1/11/4) धार्मिक व्यक्ति की पुष्टि और योग क्षेम की गारण्टी दी गई। (5/37/5) बाद में श्रीमद्भगवद्गीता में 'भी

योगक्षेम वहाम्यहम्' इसी स्वरूप की प्रस्तुति है। यानि राजा/पोषक, इसकी गारण्टी करेगा। राजा अपने समीपस्थ राज्यों/देशों/जनों को उन्नत करे। (1/174/5) सामूहिक उन्नति का सूत्र/प्रतीक। इसके अभाव में राष्ट्र का संरक्षण असंभव। राष्ट्रभाव के अभ्युदय का प्रारंभिक प्रयास। मण्डल सिद्धान्त की भी प्रारम्भिक अवस्था। राजा को बड़े से बड़े भय में भी धैर्यशाली होना चाहिए। (1/40/8) इन्द्र ने शत्रु नगरी के तुल्य आसुरी सेना को नष्ट किया। (1/174/8) इन्द्र भयंकर बलवान और शत्रुजनों का संतापक है। (1/55/1) राजा अति महिमाशाली भाव रखता है। (8/1/2) षाड्गुण्य सिद्धान्त के सूत्रों का प्रारम्भिक काल। इन्द्र हमें धन प्राप्ति के लिए आनन्दित करे। (1/176/1) राजा बड़े धनपतियों का भी शासनकर्ता है। (1/55/3) यानि, राजा सबसे बड़ा है बस धर्म के अन्तर्गत है। इसलिए वह बड़े से बड़े धनपित का भी नियमन करने का अधिकारी है। राजा हमारी महत्वकांक्षाओं को नष्ट न करें। (1/178/1) यानि सर्व प्रकार के विकास स्वातन्त्र्य की महत्ता थी। हमारी प्रजा में छिपे हुए शत्रु न हों। (10/57/1) आज के 'डीपस्टेट' का निषेध। राजा की मेधा के तेज की तुलना सूर्य के तेज से की गई है और कहा गया है कि ऐसा राजा पृथ्वीं पर सूर्यवत् ही विचरता है।

(1/175/4) देवता हमारे प्रकट और गुप्त पापों को नष्ट करें।(8/47/13) राजा के संरक्षण में सभी लोग कर्मठ होकर रहें। (7/6/6) अश्विनी दिव्य शक्ति से राजा को राज्य शासन की शक्ति देता है। (4/112/3) राजा से धनी बनाने और विद्वानों की रक्षा की अपेक्षा की गई है। (1/54/11) राजा प्रजा का स्वामी है। (1/177/1) विद्वान राजा, मित्रवत होकर, किसी को दुख नहीं देता। (1/97/30) राजा ही प्रजा का संरक्षक होता है। (4/1/2) राजा ही प्रजा रक्षक और अनुग्रहकर्ता होता है। (3/59/4) राजा अपने प्रबल मित्र के पास दूत भेजता है। (1/71/4) राजा वरूण में अनुशासन के कुछ नियम हैं। (1/91/3) यहां पर यह ध्यातव्य है कि राजा वरूण दण्ड के देवता भी हैं और राष्ट्र के सुदृढ़ीकरण में इसकी भूमिका इन्द्र के सहयोग से बहुत महत्वपूर्ण रही है। प्रजातांन्त्रिक रूप से राजा के चयन के भी ये प्रबल पक्षधर रहे हैं इसलिए ही ऋषि इनके अनुशासन सम्बन्धी नियमों का उल्लेख कर रहा है। हे इन्द्र! हमें योग्य संतान, धन और अन्न से युक्त कर। (1/54/19) राजा का स्वभाव धन के विषय में कैसा हो उसको भी ऋषि संकेत के रूप में प्रस्तुत करता हुआ लिखता है कि राजा धन—संग्रह करता है और लोक कल्याणकारी योजनाओं के रूप में धन वितरित भी करता है। (4/17/21) बाद में कर संग्रह और उसके लोककल्याण में वितरण के सिद्धान्त इसी सूत्र के आधार पर विकसित हुए। इन्द्र को शोषणकारी के प्रति भूमिका निर्वहन करने वाले के रूप में अपेक्षा करते हुए प्रार्थना की जा रही है कि हे इन्द्र! तू प्रजा के शोषक के लिए अपना वज्र उठा। (1/175/4) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के भी सूत्र विकसित होने लगे थे; ऋषि उसी को इंगित करते हुए राजा की भूमिका सुनिश्चित करता हुआ लिखता है कि राजा सन्धि और विग्रह दोनों का काम करता है। (8/1/2) लोक स्वास्थ्य की गारण्टी के प्राथमिक स्रोत के रूप में एक मन्त्र में जिसमें अश्विनी कुमार की भूमिका का निरूपण किया गया है। ऋषि उल्लेख करता है कि अश्विनी प्रत्येक प्रजाजन के पास जाते हैं। (7/74/1) कर संग्रह के लिए शक्ति सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए ऋषि लिखते हैं कि राजा अपनी शक्ति से प्रजा से कर वसूलता है। (7/6/5) इन्द्र की उग्रता उसे सभी कार्यों में अग्रणी बनाती है। (1/55/3)

राजा को अज्ञान और भूख—प्यास को दूर करने वाले के रूप में भी निरूपित किया गया है। (10/43/3) इन्द्र को बलवानों के लिए बल (शत्रु) और मित्रों के लिए मित्र के रूप में दर्शाया गया है। (1/100/4) वह शत्रु को पास नहीं आने देता। (1/76/1) वह इन्द्र प्रहार

करने के लिए अपने वज्र को तीक्ष्ण करता है। (1/55/3) इन्द्र को सोमपायी, वृत्रहन्ता और बलवान कहा गया है। (5/40/4) वह इन्द्र अपने बल से बड़े—बड़े युद्ध करता है। (1/55/5) यानि, राजा को अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए अन्यथा कि स्थिति में बड़े युद्धों को जीता नहीं जा सकता और राजा के लिए जो विजिगीषु उपाधि है वह सिद्ध नहीं होगी। राजा को लोकनायक और प्रजा को शक्ति प्रदायक बताया गया है। (4/16/8) इन्द्र सेना का बलवर्धक भी है। (1/74/10) एक ही राजा अनेक स्थानों पर नाना रूपों में रहता है। (3/55/4) यानि, विभिन्न व्यवस्थाओं के संचालनकर्ता जो हैं वे भी राजा के रूप में ही मान्य थे। इस प्रकार शक्ति विभाजन के सिद्धान्त का प्राथमिक स्रोत का सूत्र है यह मन्त्र। हे इन्द्र! तुम बलवान, दानी, शत्रुसेना के जेता और अमर हो। (1/175/2) राजा (संस्था) की अमरता का सिद्धान्त। है बलवान इन्द्र! तुमने व्रतहीन असुरों को जला दिया। (1/125/3) हे इन्द्र! तुम सुखपूर्वक निवास के लिए अपने घर में कर्म करो। (1/74/3)

सुख की गारण्टी के लिए कर्म सिद्धान्त का आदि प्रतिपादक है यह मन्त्र। परवर्ती साहित्य में सुख और कर्म का सम्बन्ध इसी मन्त्र के आधार पर स्थापित हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' मन्त्र का भी आदि श्रोत । वरूण को दुखहर्ता और राष्ट्र का अधिपति बताया गया है। (7/87/6) राष्ट्र का अभ्युदय हो चुका था तभी उसे संसार का राजा बताया गया है। शास्त्र के ज्ञाता के रूप में राजा अनुशासनुसार सन्मार्ग पर चलता है। (1/73/1) इन्द्र युद्ध में गया और उसने रूके हुए जल को प्रवाहित किया। (1/74/4) जल के सतत् प्रवाह का सिद्धान्त। इन्द्र को सभी मनुष्यों का राजा माना गया है। (1/32/15) वह राजा विद्वानों के सान्निध्य में महाविद्वान हो गया। (1/100/4) यह मन्त्र राजा के सर्वज्ञ होने का स्रोत । इन्द्र से ऋषि अपने द्रोही को रेकने और उसे वज्र से मारने की प्रार्थना करता है। (1/176/3) राजा ही पापियों का नाशक और अन्नादि का दाता है। (4/17/8) खाद्य सुरक्षा की गारण्टीकर्ता के रूप में उसकी भूमिका है। शत्रुओं के विनाश में राजा अन्य राजाओं का सहयोग लेता है। (1/40/8) मण्डल सिद्धान्त का आधारभूत मन्त्र/राजा—प्रजा के परस्पर सम्बन्धों के विषय में ऋषि उल्लेख करता है कि जिस प्रकार धुरी अरों को, उसी प्रकार राजा प्रजा को धारण करता है। (1/32/15) हे अश्विनी! तुम राजन और मनुष्यों में स्फुर्ति भर दो। (8/35/17) हे सोम राजा! जो तेरे मन के अनुसार कार्य करता है, वह उत्तम प्रजा है। (9/114/1) हम राजा के नियमानुसार चलते हैं (8/25/16) हे अग्नि! प्रजा को अजेय एवं अक्षय क्षात्रबल और पराक्रम दो। (6/8/6) हे अश्विनी! तुम गायों और प्रजाजनों को पुष्ट करो। (3/35/18) हे राजा सोम! तुम आगे और पीछे से हमारी रक्षा करो। (8/48/15) हम यज्ञप्रेमी राजा के प्रिय हैं। (1/26/7) प्रजा पालक राजा हमारा प्रिय है। (1/26/7) हे अश्विनी! तुम हमारे ज्ञान और बुद्धि को पुष्ट करो। (8/35/16)प्रजा के पांचों वर्ग राजा के लिए जय ध्वनि करते हैं (8/63/7) राजा दुष्टों का धन छीनकर सारा धन प्रजा को दे दे। (1/84/20), अश्विनी, उषा और सूर्य के साथ ही, हमें बल दे। (8/35/13) हम युद्धों में अग्नि को पुकारते हैं (8/43/21) हे अश्विनी! तुम राक्षसों को मारो और रोगों को दूर करो। (8/35/16)

इस प्रकार इन सूत्रों के माध्यम से यह दृष्टिगोचर होता है कि ऋग्वेद काल में शासन सम्बन्धी अनेक सूत्र प्रचनल में आ गए थे और ये सूत्र ही लोक कल्याण की गारण्टी के रूप में मान्य थे। बाद में, इन्हीं सूत्रों के आधार पर धर्म सूत्रों एवं स्मृतियों का प्रणयन हुआ और महाकाव्यों में राजाओं के क्रिया—कलाप सम्बन्धी स्वरूपों का निर्धारण भी हुआ। इन महाकाव्यों और लौकिक साहित्य में जो

शासन सम्बन्धी विधान सुनिश्चित किए गए; वे भी इन्हीं सूत्रों को आधार मानकर किए गए। जो कथा प्रसंग लैकिक साहित्य में हमें देखने को मिलते हैं उन पर भी इन्हीं सूत्रों की छाप है। इस प्रकार से ऋग्वेद में जो सूत्र उपलब्ध हैं वे आज के भी लोक गारण्टी अधिनियमों के आधारपभूत रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होते हैं; किन्तु जानकारी के अभाव में इन्हें मूल संदर्भ के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकी। इस दृष्टिकोण से यह शोध पत्र उस अंतराल की पूर्ति कर भविष्य की संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त करता है।

The Ascendancy of Nationhood (Rashtratv) and Nationalism (Rashtrabhav) in Bharat after 2014

Dr Rakesh Arya (Researcher)
Swadeshi Shodh Sansthan,
New Delhi

Theoretical and Conceptual Analysis: what is country, nation, state, nation-state, nationalism and patriotism. A country is a geographical entity with defined borders, a government, and sovereignty over its territory. It is a political and administrative unit recognized in international law. Example: India, USA, France. A nation is a group of people (cultural unity) who share common cultural elements like language, history, ethnicity, and traditions. A nation may or may not have its own sovereign territory. Example: The Kurds, the Basques. A state is a political and legal entity with a defined territory, a permanent population, a government, and the capacity to enter into relations with other states (sovereignty). Example: China, Germany, Brazil. A nation-state is a political entity where a single nation coincides with the boundaries of a state. It is both a nation (cultural unity) and a state (political sovereignty). Example: Japan, France. Nationalism is an ideological movement that emphasizes loyalty, devotion, and allegiance to one's nation. It seeks to promote national identity, sometimes advocating self-determination or superiority over other nations. It can be civic nationalism (based on shared values and institutions) or ethnic nationalism (based on common ancestry and culture).

Primordialism: According to this theory nations and nationalism are ancient, fixed, natural characteristics rooted in shared language, ethnicity, culture, ancestry and historical continuity. Prussian philosopher and theologian Johann Herder known for his cultural nationalism. His ideas about nations were based on culture, language and shared history. Herder believed that nations are organic groups with their own unique spirit. He thought that nations create natural borders and that each culture develops from its language and shared history. He believed that nation-states are an expression of cultural differences, not the creator of them. Johann Herder considered key figures who argued for such a cultural definition of nationhood and nationalism. While Indian nationalist philosopher Aurobindo Ghose in his book *The Life Divine (1919)* viewed nationalism not just as a political movement but as a spiritual awakening of India. His

concept of 'Sanatana Dharma' and the idea of 'Divine India' shaped the Hindutva discourse and even contemporary Indian socio-political churning. He emphasized spiritual resurgence, self-sacrifice and reliance, cultural and national pride and the revival of ancient Indian traditions. Aurobindo Ghose's socio-political philosophy reaffirms the idea that India's destiny was linked to global spiritual evolution.

Indian political philosopher V.D. Savarkar in his book *Hindutva: who is a Hindu? (1923)* formulate the concept of Hindutva. He distinguished between Hinduism (a religious system) and Hindutva (a cultural and political identity). Savarkar argued that India should be a Hindu Rashtra (Hindu nation) where people who consider India their Pitrabhumi (Fatherland) and Punyabhumi (Holy land) for the core national identity. He was skeptical of Muslim loyalty to India and believed that they should either accept Hindutva as their cultural identity or remain politically marginalised.

Indian philosopher Swami Vivekananda's views on nationalism were deeply rooted in his vision of a spiritually awakened and socially progressive India. His idea of nationalism was not based on territorial expansion or political dominance but on spiritual unity, self-confidence, and service to humanity. Vivekananda believed that India's national identity was built on its spiritual and cultural heritage. He saw religion as the backbone of Indian civilization and called for a revival of Hinduism based on its true essence- universalism, tolerance, and selfless service. He urged young Indians to break free from the colonial mindset and rediscover their cultural and philosophical heritage. He considered education the key to national regeneration. He emphasized an education system that combined modern scientific knowledge with India's traditional wisdom. Unlike narrow religious nationalism, Vivekananda's nationalism embraced all communities, castes, and sects. He believed that India's strength lay in its unity in diversity. He called for harmony between different religious communities and criticized caste-based discrimination. He saw the youth as the driving force of nationalism. Vivekananda's nationalism was not isolationist; he wanted India to engage with the world while preserving its identity. His speech at the Parliament of the World's Religions (1893) in Chicago presented India as a beacon of spiritual wisdom. Swami Vivekananda's ideas remain relevant in contemporary India, particularly in the context of cultural revival, education reforms, social equality, and the role of youth in national development.

M. S. Golwalkar (1906-1973) was a key ideological figure in the development of Hindu nationalism in India and served as the second Sarsanghchalak of the Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) from 1940 to 1973. His writings and speeches significantly shaped the discourse on Indian nationalism and national identity, particularly from the perspective of Hindutva.

Guru Golwalkar's interpretation of nationalism was deeply rooted in cultural and civilizational identity. Golwalkar's vision of nationalism was based on the idea that India's national identity was fundamentally Hindu. He argued that the Hindu civilization had provided cultural continuity to India, and thus, the nation's identity should be built around Hindutva. In *We, or Our Nationhood Defined* (1939), he emphasized that the Hindu way of life, traditions, and culture should define the Indian nation. Unlike the secular, territorial concept of nationalism promoted by the Indian National Congress, Golwalkar believed that national identity should be based on cultural unity rather than just political boundaries. He rejected the idea that merely living in India made one part of the national fold unless they identified with Hindu culture.

Golwalkar viewed religious minorities, particularly Muslims and Christians, as groups that needed to assimilate into Hindu cultural identity. He saw these communities as potential threats to national unity unless they adopted Hindu cultural values. This idea was controversial and opposed by secular like Jawaharlal Nehru and Mahatma Gandhi. In his early writings, Golwalkar appeared to draw from European nationalist movements, particularly the idea of cultural homogeneity as a foundation for a strong nation. His comparisons with Nazi Germany's emphasis on racial purity were widely criticized, though later interpretations suggested that he refined his views over time. Under his leadership, the RSS expanded significantly and influenced Indian politics by promoting a vision of nationalism centred on Hindu unity. His teachings laid the groundwork for the rise of political Hindutva, influencing later organizations like the Bhartiya Janata Party (BJP).

His ideas continue to influence Indian politics, particularly in the debates over secularism, nationalism, and identity. The rise of Hindu nationalism in contemporary India reflects many of Golwalkar's ideological foundations, though his stance on cultural nationalism remains a point of contention. Scholars and critics debate whether his vision of nationalism was inclusive or exclusionary, especially in the context of India's diverse religious and cultural landscape.

American anthropologist Clifford Geertz explored nationalism through the lens of culture, ethnicity, and symbolic systems. His views on nationalism can be understood primarily through his work on 'primordialism' and 'the integrative revolution'. Geertz argued that nationalism is deeply tied to primordial attachments, such as language, religion, ethnicity, and historical tradition. Geertz examined nationalism in postcolonial states, especially in Asia and Africa, where new nations had to reconcile ethnic and regional diversity with state-building. Geertz emphasized the role of symbols, rituals, and cultural narratives in shaping national consciousness. He believed that nationalism was not just about political organization but also about creating a shared sense of belonging through historical myths, traditions, and cultural practices. Geertz was sceptical of Western models of nationalism being imposed on post-colonial societies. He argued that each nation had unique cultural and historical trajectories, making nationalism a highly context-specific phenomenon rather than a one-size-fits-all ideology. His work remains relevant for understanding ethnic conflicts, multiculturalism, and the challenges of national integration in diverse societies.

British historical sociologist Anthony D. Smith was a prominent scholar in nationalism studies, known for his contributions to the understanding of nations, nationalism, and national identity. His work bridges modernist and ethno-symbolist perspectives on nations and nationalism. His main concepts are Ethno-Symbolism: Smith challenged purely modernist theories of nationalism (like those of Ernest Gellner and Benedict Anderson) by emphasizing the deep-rooted cultural and historical elements of nations. He argued that nations are not purely modern constructs but have pre-modern ethnic foundations. The concept of 'Ethnie': He introduced the idea of 'Ethnie' (premodern ethnic communities) as the historical and cultural basis for modern nations. He emphasizes the role of myths, symbols, and traditions in shaping national consciousness. *The Ethnic Origins of Nations (1986):* in this book he argues that modern nations evolve from earlier ethnic communities rather than being entirely new formations. His work remains foundational in nationalism studies, influencing scholars who examine how historical narratives, cultural memory, and identity shape modern political communities.

Modernisation theory: Modernization theory of nations and nationalism argues that nations and nationalism are products of modernity, emerging primarily due to social, economic, and political transformations such as industrialization, urbanization, literacy, and the rise of centralized states. Nationalism is seen as a relatively recent phenomenon, emerging mainly in the 18th and 19th centuries. This perspective challenges primordialist views.

Social-anthropologist Ernest Gellner argues in his book *Nations and Nationalism* (1983) nationalism is a modern phenomenon, closely linked to industrialization and the transition from agrarian to industrial societies. Gellner defines nationalism as a political principle that holds that the political and national unit should be congruent. In agrarian societies, people were divided by rigid social hierarchies, localized cultures, and different dialects. Industrialization demanded a mobile, literate, and homogenous workforce with a standardized language and culture to facilitate economic growth and communication. This created the need for a centralized education system that fostered a shared national identity. Pre-modern societies had multiple local cultures ('low cultures'). Industrial societies required a unified and standardized 'high culture' to integrate people into the national economy. The state played a key role in promoting this high culture through education and institutions. Gellner believes nations are socially constructed through historical processes. Gellner argues that nationalism is not just an ideology but a functional requirement of modern industrial society. It helps create the social cohesion necessary for industrial economies to function effectively.

Political scientist and historian Benedict Anderson is known for his seminal work of *Imagined Communities: Reflections on the Origin and Spread of Nationalism* (1983). He argues that nations are 'imagined political communities' and imagined as both inherently limited and sovereign, because their members, even in the smallest nations, will never know most of their fellow citizens, but they feel a sense of shared identity. Anderson highlights the role of print capitalism (the rise of mass media like newspapers and books) in shaping national consciousness by creating a shared language and discourse. Anderson also examines how nationalism was adapted in the colonial and postcolonial contexts, particularly in Asia and Latin America.

British historian of nationalism Eric Hobsbawm in his book *Nations and Nationalism Since 1780: Programme, Myth, Reality* (1990). His approach to nationalism is rooted in historical materialism, viewing nations as modern constructs rather than ancient, natural entities. Hobsbawm argues that nations are not immemorial but are modern phenomena, primarily emerging from the late 18th century onward. He views nationalism as a product of economic, social, and political changes, particularly the Industrial Revolution and capitalist modernization.

He makes a distinction between proto-national identities (such as religious, linguistic, or regional identities) and modern nationalism, which only fully emerges in the 19th century. State-led nationalism (from above) often plays a crucial role in shaping national consciousness. Hobsbawm emphasizes the role of states, elites, and intellectuals in constructing national identities rather than nations arising "naturally" from the people. He sees nationalism as a political project that is often engineered by ruling elites to mobilize populations. Hobsbawm introduced the concept of "invented traditions", arguing that many national symbols, myths, and customs are artificially created to instil a sense of continuity. These traditions help in legitimizing national identities and binding people to the state. Hobsbawm suggested that globalization and supranational institutions (e.g., European Union, United Nations) were weakening traditional nationalist sentiments.

Modernization theory remains a foundational perspective in understanding nations and nationalism. It highlights how structural changes- industrialization, state-building, and mass communication- have shaped national identities. However, contemporary scholars often integrate modernization theory with other approaches, such as ethno-symbolism and constructivism, to provide a more nuanced view of nationalism's origins and evolution.

Constructivism and instrumentalism: nations and nationalism are social and political constructs shaped by historical and ideological processes. American sociologist Liah Greenfeld in *Nationalism: Five Roads to Modernity (1992)* examines the emergence and spread of nationalism in five societies: US, Russia, UK, France and Germany. She identified three ideal types of nationalism: first, individualistic-civic nationalism, second, collectivistic-civic nationalism (US, UK and France), and third, collectivistic-ethnic (Russia and Germany).

American political scientist Paul Brass in his book *Ethnicity and Nationalism: Theory and Comparison (1991)* explores the origins of nationalism. Brass argued that nationalism is not an inherent or primordial identity but rather a product of political and social mobilization. He emphasized the role of political elites and institutions in constructing ethnic and national identities to serve political interests. His contributions to the study of nationalism are significant, particularly in how he conceptualized ethnic and national identities as dynamic, socially constructed phenomena rather than fixed categories.

He challenged the idea that ethnic groups are naturally occurring and instead focused on the political and economic conditions that shape identity formation. Brass extensively studied communal violence in India and its connection to nationalism. He argued that nationalist and communal identities are often manipulated by political actors to consolidate power, as seen in his influential work *The Production of Hindu-Muslim Violence in Contemporary India* (2003). Brass introduced the concept of an "institutionalized riot system", where political actors actively shape and sustain communal tensions. He analysed how national identity is formed through continuous political contestation rather than historical or cultural continuity.

His theories remain crucial for understanding nationalism in South Asia, particularly in the context of India's changing political landscape, ethnic conflicts, and identity politics. His instrumentalist approach provides a counterpoint to primordialist perspectives.

Postcolonial and Critical Theories: These perspectives examine nations and nationalism in the context of colonialism, power structures and identity politics. Indian political scientist Partha Chatterjee known for his work on nationalism and postcolonial studies. In his seminal work *The Nation and Its Fragments: Colonial and Postcolonial Histories* (1993), argues that Indian nationalism did not simply imitate Western and Eurocentric models but developed its own distinct form. He critiques Benedict Anderson's concept of *imagined communities* by pointing out that nationalism in colonial societies emerged through a negotiation with colonial rule rather than merely replicating European nationalism. Chatterjee differentiates between the *inner* (spiritual, cultural) and *outer* (political, economic) domains of nationalism. While colonial powers controlled the outer domain (administration, economy), Indian nationalists sought to protect and assert control over the inner domain (culture, traditions, identity). This distinction helps explain how nationalism in India maintained certain indigenous traditions while simultaneously engaging in modern political struggles.

Post-colonial theorist Homi K. Bhabha offers a critical perspective on nationalism, particularly through his concepts of hybridity, mimicry, ambivalence, and the Third Space. His work challenges traditional, homogeneous notions of nationalism by emphasizing its fluid, contested, and constructed nature. Bhabha views nationalism not as a fixed identity but as a discursive construct- a product of storytelling, myths, and representations. He argues that the nation is 'written' and 'rewritten' through cultural practices, media, and literature, making it dynamic rather than stable. Nationalism often claims cultural purity, but Bhabha shows how it

is actually hybrid, shaped by colonial and postcolonial interactions. The Third Space is where cultural interactions generate new, hybrid identities, challenging dominant nationalist narratives. This concept helps understand postcolonial nationalism, which is often caught between colonial influence and indigenous aspirations. Bhabha's work is crucial in understanding how nations are imagined and how they negotiate cultural differences. His critique is particularly relevant for postcolonial states like India, where national identity is continuously negotiated through history, politics, and culture. His theories encourage a more inclusive nationalism, acknowledging diversity rather than imposing a singular identity.

Dr B.R. Ambedkar and Indian Nationalism: Ambedkar had a complex and critical perspective on nationalism. Unlike many of his contemporaries in the Indian nationalist movement, Ambedkar viewed nationalism through the lens of social justice, particularly concerning caste oppression. Ambedkar was deeply critical of Hindu nationalism, which he saw as rooted in Brahmanical supremacy and caste hierarchy. He argued that Hindu society lacked a sense of fraternity, which he considered essential for true nationalism. His works, especially *Annihilation of Caste*, highlight how caste divisions prevented India from developing into a unified nation. Ambedkar believed that nationalism should be inclusive and democratic. He often spoke of the need for Dalits to assert their rights as a separate political community, which led to his advocacy for separate electorates for Dalits in the Poona Pact (1932). He saw caste oppression as a major barrier to national unity and believed that true nationalism could only emerge by eliminating caste discrimination.

Unlike Mahatma Gandhi and others who emphasized cultural or spiritual nationalism, Ambedkar's vision of nationalism was rooted in constitutionalism and legal equality. As the chief architect of the Indian Constitution, he ensured that India's nationalism was based on democratic principles, fundamental rights, and social justice. Ambedkar rejected the idea of nationalism based solely on emotional or religious unity. He was wary of majoritarian tendencies and warned that mere political independence would not lead to true nationhood unless accompanied by social and economic justice. His advocacy for reservations and affirmative action was part of his broader nationalist vision that sought to uplift marginalized communities. Ambedkar saw the Indian nation-state as a necessary framework for justice but believed that a true nation had to be built by ensuring the dignity and participation of all its citizens, especially Dalits. His conversion to Buddhism in 1956 was a political statement against the caste-based social order that he saw as antithetical to true nationalism.

Ambedkar's nationalism was fundamentally different from the dominant narratives of his time. While he supported Indian independence, he insisted that a truly free nation must be built on social justice, equality, and fraternity. His ideas remain relevant in contemporary debates on nationalism, caste, and democracy in India.

B.R. Ambedkar and V.D. Savarkar held sharply contrasting views on Hindutva, Hindu identity, and the Indian nation-state. While both were critical of certain aspects of caste oppression and Muslim politics, their ideological foundations diverged significantly. Savarkar, in his book *Hindutva: Who is a Hindu?* (1923), defined Hindutva as a cultural and political identity, not just a religious one. He argued that a Hindu is someone who considers India both as their *pitribhumi* (fatherland) and *punyabhumi* (holy land), thereby excluding Muslims and Christians from this national identity. Ambedkar, however, rejected this exclusionary definition. In *Thoughts on Linguistic States* (1955), he criticized Hindutva for being rooted in Brahminical supremacy and for equating Hindu identity with nationalism, which he saw as a majoritarian imposition. Savarkar claimed that caste divisions weakened Hindus and advocated for social unity but did not propose structural changes to dismantle caste. His idea of Hindutva sought to bring all Hindus together under a nationalist framework while keeping the social order intact. Ambedkar, in *Annihilation of Caste* (1936), explicitly attacked Hinduism for being inherently hierarchical and oppressive. He argued that Hindutva, instead of challenging caste oppression, reinforced Brahminical supremacy under the guise of Hindu unity. Savarkar saw Hindus and Muslims as distinct political entities. He advocated for Hindu political dominance and was a proponent of militarizing Hindus to counter what he saw as Muslim aggression.

Ambedkar, while also critical of certain aspects of Muslim politics, opposed Savarkar's communal nationalism. In *Pakistan or the Partition of India* (1940), he noted that Hindu nationalism, as defined by Savarkar, was as much a form of separatism as Muslim nationalism. He argued for a constitutional and democratic framework rather than a religious-nationalist state. Savarkar, though an atheist personally, saw Hindu culture as the basis for Indian nationalism. Ambedkar, on the other hand, rejected the idea of Hindu cultural nationalism. He argued for a secular state with constitutional safeguards for minorities and the oppressed. His conversion to Buddhism in 1956 was a direct rejection of Hinduism and its social order.

Ambedkar's critique of Savarkar's Hindutva was fundamentally about inclusion versus exclusion. While Savarkar sought Hindu unity under an ethnic-nationalist framework,

Ambedkar saw Hinduism as an oppressive system that needed radical transformation. Ambedkar's vision was rooted in social justice and constitutional democracy, while Savarkar's Hindutva was majoritarian and exclusionary.

Dr B.R. Ambedkar had critical perspectives on both Mahatma Gandhi and Sri Aurobindo Ghosh, particularly regarding their views on nationalism and national identity. His critiques were largely shaped by his concerns about caste, social justice, and the nature of Indian nationalism. Ambedkar and Gandhi had significant ideological differences, especially on caste and nationalism. Ambedkar strongly opposed Gandhi's idea of Varna-based social order, where Gandhi sought to reform caste rather than abolish it. He rejected Gandhi's advocacy of Harijan upliftment without dismantling caste hierarchy, arguing that such reforms were insufficient and merely reinforced upper-caste dominance. Gandhi's nationalism was centred on spiritual unity, rural self-sufficiency, and non-violence. Ambedkar, however, saw caste oppression as a fundamental issue and argued that true nationalism could not exist in a society where caste discrimination persisted. He believed that political freedom (swaraj) without social equality would not create a just nation. He considered Gandhi's methods paternalistic and insufficient. While Gandhi used the term Harijan (Children of God), Ambedkar saw this as patronizing and preferred a legal and structural approach to ensure Dalit empowerment. This fundamental disagreement led to the Poona Pact of 1932, where Ambedkar had to accept reserved seats instead of separate electorates for Dalits.

Ambedkar did not engage as extensively with Aurobindo as he did with Gandhi, but his views on nationalism contrasted with Aurobindo's spiritual and cultural nationalism. Aurobindo saw India as a divine entity, where nationalism was a religious and spiritual awakening. Ambedkar, in contrast, argued that nationalism should be based on social and economic justice rather than spirituality. He was skeptical of nationalism rooted in Hindu revivalism, which he believed excluded Dalits and other marginalized groups. Aurobindo envisioned Hinduism as a unifying force for Indian nationalism. Ambedkar, however, saw Hinduism as the root cause of caste oppression and argued that Hindu social order was inherently discriminatory, making true national unity impossible without radical social reform. While Aurobindo sought a synthesis of ancient Hindu traditions and modernity, Ambedkar advocated a break from traditional Hinduism, proposing Buddhism as an alternative for Dalits and a more egalitarian society.

Gandhi's nationalism, based on moral and spiritual principles, was seen by Ambedkar as inadequate for addressing caste oppression. Aurobindo's nationalism, rooted in Hindu spirituality, was seen as exclusionary and incompatible with Ambedkar's vision of an egalitarian India. Ambedkar's own nationalism was deeply tied to constitutional democracy, social justice, and economic equality, rejecting any notion of nationalism that upheld caste, religious identity, or spiritual essentialism.

Michael Billig's theory of banal nationalism (1995) argues that nationalism is not just about grand and overt displays but is also reinforced through every day and mundane practices. It is subtly embedded in daily life through symbols, language, rituals, and media, shaping how people think about the nation. Applying this theory to India after 2014, we can see how everyday nationalism has been reinforced by present government.

After 2014, India's banal nationalism has been strengthened through routine symbols and acts that continuously reinforce national identity. The increased emphasis on displaying the tricolour in public places, schools, and government offices (e.g., the Har Ghar Tiranga campaign). The mandatory playing of the national anthem in cinemas (2016 Supreme Court ruling, later revoked). The widespread use of slogans like "Bharat Mata Ki Jai" "Jai Shriram" and "Jai Hind" in public speeches and media. The push for renaming places to reflect Indian/Hindu heritage (e.g., Allahabad to Prayagraj, Aurangzeb Road to Dr APJ Abdul Kalam Road).

Billig highlights the role of media in reinforcing nationalism unconsciously. In India, news channels and social media constantly highlight national security, border tensions, and military achievements. The mainstream bollywood films have increasingly featured patriotic themes, such as *Uri: The Surgical Strike* (2019) and *Shershaah* (2021). The cricket matches against Pakistan are framed as nationalistic events, fostering a sense of collective identity.

Under the BJP government, Hindutva nationalism has been normalized in everyday life. The increased visibility of Hindu festivals and rituals in public spaces. The Ram Temple in Ayodhya (2024) became a nationalist symbol, reinforcing the idea of India as a Hindu nation. The promotion of Hindi as the national language and emphasis on Indian cultural values in education and policymaking.

The Indian military has become a key aspect of banal nationalism like Surgical Strikes (2016) and Balakot Airstrikes (2019) were widely celebrated, reinforcing national pride. The slogan "Modi Hai Toh Mumkin Hai" linked national security achievements to political leadership. The Social media platforms have played a significant role in everyday nationalism: Hashtags like #AtmaNirbharBharat (Self-Reliant India), #VocalForLocal, and #BoycottChina reflect economic nationalism. The rise of "anti-national" discourse- branding critics as "anti-national" or "urban Naxals" has further shaped public discourse. Since 2014, banal nationalism in India has become more pronounced through everyday rituals, state policies, media, religion, and digital spaces. Unlike overt nationalism, these elements subtly reinforce a Hindu majoritarian identity and state-driven patriotism, making it an essential lens to study contemporary Indian politics and society.

American sociologist Rogers Brubaker's theories on nationalism, particularly his concepts of "nationalism without groups", "nationalizing states", and "civic versus ethnic nationalism", provide useful lenses for analysing India's political and social landscape after 2014. Brubaker's concept of the "nationalizing state" refers to a state where the dominant ethnic or cultural group actively promotes its own interests, often through political, legal, and cultural means, sometimes at the expense of minority communities. Since 2014, under the leadership of Narendra Modi and the BJP, India has seen an increased emphasis on Hindutva nationalism, with policies and rhetoric often framing India as a Hindu-majority nation. Policies such as the Citizenship Amendment Act (CAA) of 2019, debates over the Uniform Civil Code (UCC), and the revocation of Article 370 in Jammu and Kashmir reflect nationalizing tendencies aimed at reinforcing a Hindu cultural identity within the Indian polity. The "Othering" of certain groups, particularly Muslims and certain regional minorities, aligns with Brubaker's idea that a nationalizing state seeks to privilege one group over others.

Brubaker differentiates between civic nationalism, which is inclusive and based on shared political values, and ethnic nationalism, which is exclusive and based on cultural, religious, or ethnic identity. The rise of Hindutva nationalism marks a shift towards a more ethnoreligious definition of Indian identity, moving away from Nehruvian secular and civic nationalism. Campaigns like "Love Jihad", "Ghar Wapsi", and "anti-conversion laws" reinforce an ethnic-religious definition of national belonging. The idea of "New India" under Modi is framed as one that prioritizes Hindu civilizational glory, further blurring the lines between civic and ethnic nationalism.

Brubaker challenges the idea that nationalism is always driven by clearly defined ethnic groups; instead, he suggests that nationalism can be a fluid and shifting construct, amplified by discourse, media, and political actors. The use of social media and digital platforms has played a crucial role in shaping nationalist discourse, often through WhatsApp, Twitter, and other digital propaganda tools. Nationalist sentiment is not always tied to a single, rigid group but emerges in response to events- such as border conflicts with China, the Pulwama attack, and the Ayodhya verdict- which mobilize temporary nationalist fervor. The rise of "hyper nationalism" in response to issues like India-Pakistan relations, Bollywood narratives, and cricket suggests that nationalism is often performative and situational, rather than solely rooted in pre-existing social groups.

Brubaker's framework helps explain how nationalism in India post-2014 has evolved beyond traditional ethnic and civic lines. India exhibits a nationalizing state tendency, a shift from civic to ethnoreligious nationalism, and the rise of fluid, media-driven nationalist mobilization. His theory helps contextualize the changing nature of identity politics, the centralization of power, and the exclusionary tendencies of contemporary Indian nationalism.

Conclusion: The ascendancy of nationhood and nationalism in India after 2014, particularly following the election of the Bhartiya Janata Party (BJP) under Narendra Modi, has been a defining feature of Indian politics and society. This period has witnessed a resurgence of nationalist discourse, shaped by a combination of political, cultural, economic, and security factors. The BJP, with its ideological roots in Hindutva and cultural nationalism, has emphasized a vision of India centred on Hindu identity, self-reliance, and civilisational pride. Electoral successes in multiple state and national elections have reinforced the party's nationalist churning, often framed as a revival of India's lost glory. Slogans such as 'New India' and 'Sabka Saath, Sabka Vikas, Sabka Vishwas' have blended development with nationalism.

The Ram Mandir movement saw its culmination in the construction of the temple in Ayodhya, fulfilling a long-standing demand of Hindutva organisations. Nationalist narratives have increasingly been tied to religious identity, with campaigns promoting yoga, Sanskrit, and Vedic knowledge as symbols of India's heritage. Controversies around issues like cow protection, 'Love Jihad', and religious conversions have been framed within a nationalist discourse.

The Modi government has promoted self-reliance through the "Atmanirbhar Bharat" initiative, encouraging domestic manufacturing and reducing dependency on foreign imports. Calls to boycott Chinese goods, particularly after the Galwan clash in 2020, reinforced economic nationalism.

The handling of cross-border tensions with Pakistan and China, including the Balakot airstrikes (2019) and the Galwan Valley clash (2020), were framed as strong nationalist responses. India's increasing role in global platforms such as the G20, Quad, Global South and its assertion of multi-alignment, strategic autonomy and pragmatism in the foreign policy reflect a nationalist approach to global politics.

Bollywood has produced films with strong nationalist themes (e.g., *Uri: The Surgical Strike*, *The Kashmir Files, Article 370*), reinforcing nationalist sentiment. The increased visibility of nationalism on social media, with widespread use of hashtags like #BharatMataKiJai and #JaiHind.

Efforts to revise history textbooks, emphasizing India's ancient glory and minimizing Mughal contributions, reflect a nationalist rewriting of history. Figures like Swami Vivekanand, Savarkar, Sardar Patel, and Subhas Chandra Bose have been given greater prominence in national discourse.

The post-2014 period in India has seen a significant transformation in nationalism, where political, economic, and cultural narratives are deeply intertwined. While it has fostered a sense of pride and unity, it has also led to polarization, with debates over inclusivity, secularism, and democratic freedoms. The trajectory of this nationalist ascendancy will continue to shape India's domestic and foreign policies in the coming years.

References

Anderson, Benedict (1983) *Imagined Communities: Reflections on the Origin and Spread of Nationalism,* Verso.

Anderson, Benedict (2001) "Western Nationalism and Eastern Nationalism: Is there a Difference that Matters?", *New Left Review,* PP: 31-42.

Bhabha, Homi K. (1990) *Nation and Narration,* Routledge.

Bhabha, Homi K. (1994) *The Location of Culture,* Routledge.

Billig, Michael (1995) *Banal Nationalism,* London, Sage.

Brass, Paul R. (1985) *Ethnic Groups and the State,* Barnes & Noble Books.

Brass, Paul R. (1991) *Ethnicity and Nationalism: Theory and Comparison,* SAGE Publications.

Brass, Paul R. (1994) *The Politics of India Since Independence,* Cambridge University Press.

Breuilly, John (1982) *Nationalism and the State,* Manchester: Manchester University Press.

Breuilly, John (2013) *The Oxford Handbook of the History of Nationalism,* Oxford: Oxford University Press.

Brubaker Rogers (2004*) Ethnicity Without Groups,* Harvard University Press.

Brubaker, Rogers (1992) *Citizenship and nationhood in France and Germany,* Harvard University Press.

Brubaker, Rogers (1996) *Nationalism Reframed: Nationhood and the National Question in the New Europe,* Cambridge University Press.

Chatterjee, Partha (1993) *The Nation and its Fragments: Colonial and Postcolonial Histories,* Princeton University Press.

Chatterjee, Partha (2004) *The Politics of the Governed: Popular Politics in Most of the World,* Columbia University Press.

Gellner, Ernest (1983) *Nations and Nationalism,* Cornell University Press, Ithaca, New York.

Greenfeld, Liah (1992) *Nationalism: Five Roads to Modernity,* Harvard University Press.

Greenfeld, Liah (2016) *Globalization of Nationalism: Political Identities around the World,* (editor), European Consortium for Political Research, ECPR Press.

Hall, John A. (1998) (ed.) *The State of the Nation: Ernest Gellner and the Theory of Nationalism,* Cambridge University Press.

Hobsbawm, Eric (1983) *The Invention of Tradition,* Cambridge University Press.

Hobsbawm, Eric (1991) *Nations and Nationalism Since 1780: Programme, Myth, Reality,* Cambridge University Press.

Hobsbawm, Eric (2021) *On Nationalism,* Little; Brown.

Komireddi, K.S. (2019) *Malevolent Republic: A Short History of the New India,* C. Hurst & Co.

Ozkirimli, Umut (2017) *Theories of Nationalism: A critical Introduction,* Bloomsbury Publishing.

Patel, Aakar (2020) *Our Hindu Rashtra: What It Is. How We Got Here,* Westland Books.

Smith Anthony D. (1999) *Myths and Memories of the Nation,* Oxford University Press.

Smith, Anthony D. (1986) *The Ethnic Origins of Nations,* Basil Blackwell.

Smith, Anthony D. (1991) *National Identity: Ethnonationalism in Comparative Perspective,* University of Nevada Press.

Smith, Anthony D. (1995) *Nations and Nationalism in a Global Era,* Polity Press.

Smith, Anthony D. (1998) *Nationalism and Modernism,* Routledge.

Smith, Anthony D. (2004) *The Antiquity of Nations,* Polity Press.

Smith, Anthony D. (2008) *The Cultural Foundations of Nations: Hierarchy, Covenant and Republic,* Blackwell Publishing Ltd.

Smith, Anthony D. (2009) *Ethno-symbolism and Nationalism: A Cultural Approach,* Routledge.

'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' एवं आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की दृष्टि में डॉ. केशव हेडगेवार

डॉ. सुमित कुमार
सहायक आचार्य,
हिंदी विभाग भास्कराचार्य कॉलेज ऑफ अप्लाइड साइंसेज,
दिल्ली विश्वविद्लय.

राष्ट्रीय समुदाय के निर्माण हेतु जिस संस्कृति के संरक्षण पर बल दिया जाता है, उसे ही 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की संज्ञा दी जाती है। प्रस्तुत विषय पर लेखन के केंद्र में इसी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को रखे जाने का ध्येय है। हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत अनेक रचनाकार हुए हैं जिन्होंने अपनी लेखनी द्वारा समाज के मध्य अनेक प्रकार की दृष्टियों का उन्मूलन किया है। इन रचनाकारों की श्रेणी में ही विष्णुकांत शास्त्री का नाम लिया जाता है जो मूलतः कथाकार होते हुए भी स्वभावतः कवि रहे हैं। इन्होंने अपनी एकमात्र काव्य-कृति 'जीवन पथ पर चलते-चलते' के द्वारा अपने कवि-रूप की अनुपम छटा को पाठक समूह के सम्मुख प्रकीर्णनीत करने का अप्रतिम कार्य किया है। वे कहते हैं- "काव्य-लेखन की ओर प्रवृत्त होने का मुझे साहस नहीं होता था - मैं डरता था- मुझको लगता था कि मैं कवि-हृदय तो हूँ, कवि नहीं हूँ।"[1] किंतु फिर भी उन्होंने अनेक कविताओं की रचनाएँ कर अपनी लेखनी के अन्यतम स्वरूप को पाठक जगत के समक्ष प्रकट किया है।

चूँकि जीवन के आरंभ से ही कवि का लालन-पालन भक्ति-भाव से संपृक्त परिवार के वातावरण में हुआ और साथ-ही-साथ उनकी नानी के मुख से निःसृत वात्सल्य भाव की कविता की गूँज भी उनके कर्ण तक श्रावित होती रही, जिस कारण उनका स्वभाव भी कवि जैसा होता चला गया। परिणामतः अनेक निबंधों एवं अन्य गद्य विधाओं की रचना के साथ-साथ उन्होंने अपने कवि-कर्म को भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है। कविता की निर्मिती के केंद्र में कहीं-न-कहीं करुणा का भाव सर्वाधिक संलिप्त होता है, ऐसा छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने भी अपनी पुस्तक 'काव्य, कला तथा अन्य निबंध' में स्वीकार किया है। इसी करुणा की ओर ध्यानाकर्षण कराते हुए शास्त्री जी कहते हैं- "दुःख और शोक के कठिन प्रसंगों को भी कविता के वरदान के कारण मैं एक बड़ी सीमा तक बिना टूटे झेल पाया हूँ। कह सकता हूँ, कविता श्वास-प्रश्वास के समान ही मेरी अनिवार्य आवश्यकता बन गई है।"[2]

शास्त्री जी का पारिवारिक वातावरण भक्त-वत्सलता से परिपूर्ण होने के कारण संध्या-पूजा, भक्ति-गीत, कथा-वाचन, आराधना, उपासना जैसे भक्ति के साधनों को सहजे हुआ था जिसका प्रभाव उनकी कविताओं में लगभग सर्वत्र परिलक्षित हो जाता है। साथ ही "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबद्धता के कारण उनमें राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी थी।"[3] शास्त्री जी का बाल्यकाल से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबद्ध होने के कारण हिंदू संस्कृति के अनेक तत्त्व उनके भाव में समाहित हो गए थे।

भारतीय संस्कृति के अनुपम सौंदर्य का अंकन उनके चिंतन में यत्र-तत्र शब्दबद्ध हो गए हैं। शास्त्री जी ने अपने चिंतन का स्वरूप किसी विशेष विचारधारा की प्रणाली में न बाँधकर उसे अपने अंतरभाव से उकेरा है। उनके चिंतन में एक साथ भक्ति और स्वच्छंद राष्ट्र-प्रेम के भाव मुखर हो उठे हैं। वैचारिक धरातल पर शास्त्री जी ने किसी भी विचार या रचना को अस्पृश्यता की परिधि में नहीं आने दिया है। हरेक ढंग के भाव को आत्मसात करते हुए भी उन्होंने देश-प्रेम को सर्वोत्तम स्तर पर रखकर उसे सर्वत्र अपने चिंतन द्वारा अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं- "मेरे स्वभाव का एक पहलू यह भी है कि मैं समाज और देश के सामने आई चुनौतियों से तटस्थ नहीं रह पाता। देश कठिन समय से गुजरता रहे और मैं पढ़ने लिखने आदि में ही लगा रहूँ, यह मैं नहीं कर पाता।"[4] यह समर्पण ही शस्त्री जी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का प्रकटीकरण है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संघ-शिक्षा वर्ग में प्रशिक्षित होने के कारण ही शास्त्री जी के मन में उक्त कथन का भाव सदैव समाहित रहा । उन्होंने अपने परम् आदर्श परम् पूजनीय आद्य सरसंघचालक डॉ. केशवराव बलिरामपंत हेडगेवार जी के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हुए कलकत्ता में भाषण प्रस्तुत किया जो कि एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित है। कवि-स्वभाव होने के कारण एक पूरी कविता 'केशव का आत्मचिंतन' लिखकर उन्होंने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को उद्भासित करने का अन्यतम प्रयास किया है। इन्हीं कृतियों को ध्यान में रखते हुए व डॉक्टर जी को आधार बनाकर शास्त्री जी के 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को दर्शाना ही उक्त विषय का ध्येय है। शास्त्री जी के व्यक्तित्व में एक साथ राजनीति, धार्मिक-भाव व साहित्य एवं सांस्कृतिक चेतना का अनूठा संगम दिखाई देता है जो कि उनके बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है। भाषा हमारी संस्कृति एवं राष्ट्रीयता की बोधक होती है जिसके प्रति शास्त्री जी के असीम प्रेम को उद्घाटित करते हुए कहा गया है- "राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रबल पक्षधर, 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के संपोषक, सहजता और विनम्रता के पर्याय विष्णुकांत जी का सारस्वत व्यक्तित्व अत्यंत मोहक था।"[5]

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जी ने डॉ. केशव हेडगेवार को ध्यान में रखते हुए जो भाषण दिया था वह पुस्तक रूप में 'मौलिक द्रष्टा एवं महान संगठनकर्ता : डॉक्टर हेडगेवार' के नाम से प्रकाशित है । इस पुस्तक द्वारा संघ के संदर्भ में विक्षिप्त धारणाओं का खंडन करते हुए उसके राष्ट्रहित विचारों का मंडन किया गया है। "आचार्य श्री का यह व्याख्यान भ्रममूलक धारणाओं को दूर करते हुए संघ के सतत् विकासमान धवल स्वरूप को प्रस्तुत करता है।"[6]

गीतकार गोपाल सिंह 'नेपाली' आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के प्रिय कवियों में से रहे हैं। उन्हीं की एक कविता 'दीपक जलता रहा रात भर' में बड़े ही गूँढ भावों की पंक्तियाँ सन्निहित हैं-

"छिपने नहीं दिया फूलों को फूलों के उड़ते सुवास ने ।

रहने नहीं दिया अनजाना, शशि को शशि के मंदहास ने ।।"[7]

संघ की परिपाटी रही है कि कोई भी कार्य दिखावे हेतु अथवा दिखा कर नहीं करना है बल्कि बिना किसी स्वांग के राष्ट्र के संरक्षण के निमित्त करना है। परम् पूजनीय आद्य सरसंघचालक डॉक्टर हेडगेवार जी द्वारा अपने संपूर्ण जीवन-काल के दौरान किए गए राष्ट्र-कार्य उनकी इसी प्रवृत्ति को अभिव्यंजित करते हैं। इस रूप में उक्त पंक्तियों में सन्निहित भाव डॉक्टर जी के संदर्भ में प्रासंगिक बन पड़ता है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री कहते हैं- "मनुष्य अपनी कृति में जीता है, अपनी संतति में जीता है। संतति दो प्रकार की होती है- एक बिंदु परंपरा और दूसरी नाद परंपरा।"[8] शास्त्री जी का बिंदु- परंपरा से तात्पर्य पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र द्वारा मनुष्य की परंपरा को निरंतर बनाए रखने से है जबकि नाद-परंपरा द्वारा उसके विचारों को अनवरत बनाए रखने से है । विचार को प्रश्रय दिए जाने के कारण ही शरीर-पक्ष अर्थात् बिंदु-परंपरा की तुलना में नाद-परंपरा महत्वपूर्ण बन जाती है। डॉ. हेडगेवार जी के संदर्भ में शास्त्री जी की यही उक्ति सटीक दृष्टिगत होती है। आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जो राष्ट्रीयत्व अथवा हिंदुत्व सर्वत्र परिलक्षित हो रहा है उसके केंद्र में परम् पूज्य डॉक्टर केशव हेडगेवार का हिंदुत्वपरक चिंतन ही है। उन्होंने जिस नींव को अपने अथक प्रयत्नों द्वारा स्थापित किया था वह अनवरत विविध विशेषताओं को अंगीभूत करते हुए आज हम सभी को विश्वबंधुत्व की ओर ले जा रही है।

हेडगेवार जी की दृष्टि अत्यंत मौलिक थी। मौलिक से तात्पर्य 'नवीन' अथवा 'स्वकीय' से लिया जाता है। मौलिकता इस संदर्भ में लक्षित होती है कि एक ओर उनकी दृष्टि में समस्याग्रस्त समाज था तो दूसरी ओर उसके समाधान हेतु डॉक्टर जी का चिंतन, कि किस प्रकार से विद्रुप्त समाज की विकृतियों को दूर कर भारतीयों में हिंदुत्व के प्रति राग का भाव उत्पन्न किया जाए ! हालाँकि, पाठक समूह के मध्य वीर सावरकर जी की पुस्तक 'हिंदुत्व' (1923) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना के पूर्व ही प्रकाश में आ चुकी थी। उन्होंने अपनी पुस्तक के माध्यम से हिन्दुस्थान में निवास करने वालों को हिंदू चेतना के प्रति सजक करने का समीचीन प्रयास किया है। इस पुस्तक में उन्होंने डॉक्टर जी के आदर्श समर्थ स्वामी रामदास जी को भारत का मैजिनी स्वीकार करते हुए मैजिनी को इटली का समर्थ स्वामी रामदास की संज्ञा से विभूषित किया है। दोनों ही ने अपनी-अपनी राष्ट्रीय चेतना द्वारा देश और समाज के राष्ट्रीय उत्थान में अपनी अहम भूमिकाएँ प्रकट की हैं। इस पुस्तक की चर्चा हिंदुत्व और राष्ट्रीयता के संबंध की ओर ध्यानकर्षण के निमित्त मात्र है, और कोई ध्येय नहीं है।

डॉ. हेडगेवार समर्थ स्वामी रामदास और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को अपना पथ- प्रदर्शक मानते थे । उन्हीं के मानदंडों पर चलकर उन्होंने हिंदुत्व की पृष्ठभूमि तैयार की, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप आज हमारे सम्मुख उद्भासित हो रहा है। डॉक्टर जी ने समर्थ स्वामी रामदास जी के 'दासबोध' एवं 'हनुमत् उपासना' की महत्ता को स्वीकार करते हुए उन्हें स्वयं के जीवन में उतारा था । सर्वांग प्रभु के व्यक्त रूप की सेवा हेतु समर्पण ही 'हनुमत् उपासना' है। हमारे चक्षुओं के सम्मुख प्रस्तुत चराचर जगत् ही प्रभु का व्यक्त रूप है जिसकी उपासना उसके दास का ध्येय है। जिस कार्य को प्रभु राम हेतु उनके अनन्य भक्त हनुमान ने किया, उसी कार्य रामरूपी प्रभु 'भारतवर्ष' के लिए डॉक्टर जी ने किया है। डॉक्टर जी ने अपने चक्षुओं के सम्मुख आलोकित समाज को ही प्रभु राम के रूप में

स्वीकार करते हुए उसके सेवा हेतु समर्पण-भाव को प्रकट किया है। राम की भक्ति से उनका तात्पर्य राष्ट्र की सेवा से रहा है। इस रूप में वे रामभक्त अर्थात् राष्ट्रभक्त थे। उनका मानना था कि, "राम की पूजा का अर्थ केवल मंदिर में जाकर पुष्प चढ़ाना नहीं है। राम की सेवा करने का अर्थ है कि राम का जो यह व्यक्त चराचर समाज है उसकी सेवा करना।"[9]

समर्थ स्वामी रामदास की भावनाओं को स्वीकार करते हुए डॉक्टर जी ने अपना संपूर्ण जीवन सामाजिक सेवा में समर्पित कर दिया। इसी प्रकार उन्होंने बाल गंगाधर तिलक द्वारा निःसृत राष्ट्रीय विचारों को उनकी पत्रिका 'केसरी' के द्वारा आत्मसात कर स्वयं के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक सबलता के साथ विराजमान किया। डॉक्टर जी बचपन से ही देशभक्त बालक थे। हीरक जयंती के अवसर पर रानी विक्टोरिया का विरोध व एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक पर होने वाले अग्निक्रीड़ा का विरोध डॉक्टर जी का हिंदू राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव को उद्घाटित करता है। उनके मुख से प्रस्फुटित शब्द किसी पुस्तक में उद्धृत है- "जो मेरी रानी नहीं है, जो मेरा राजा नहीं है, उसकी खुशी में मैं कैसे खुश हो सकता हूँ, जिसने मेरे ऊपर अत्याचार किया है, मेरे ऊपर शासन किया है। मैं उससे अपने देश को स्वतंत्र करूँगा, मुक्त करूँगा।"[10]

डॉक्टर जी द्वारा अत्यंत अल्प आयु में किया गया यह विरोध युवा पीढ़ी के लिए सार्वकालिक प्रेरणा का विषय प्रतीत होता है। इसी प्रकार उन्होंने अल्प आयु में ही ब्रिटिश सरकार का विरोध करते हुए नीलसिटी उच्च विद्यालय के छात्रों द्वारा 'वंदे मातरम' का जयघोष करवा कर अपनी राष्ट्रभक्ति का अकाट्य परिचय दिया। रिस्ले सर्क्युलर के अधीन ब्रिटिश सरकार द्वारा 1905 में 'वंदे मातरम' का विरोध किया गया था जिसका परिणाम क्या हो सकता था यह निरीक्षक और प्रधानाध्यापक 1909 में देखते रह गएं। हालाँकि, डॉक्टर जी को विरोध का प्रतिनिधित्व करने के कारण विद्यालय से निष्कासित कर दिया गया किंतु फिर भी उन्होंने अंततः कोलकाता के नेशनल मेडिकल कॉलेज से अध्ययन कर डॉक्टरी की उपाधि प्राप्त की, जो कि विषम परिस्थितियों में उनके द्वारा किया गया अमूल्य कार्य था।

हिंदू राष्ट्रोत्थान में 'अनुशीलन समिति' का महत्व अनुपम रहा है। इस समिति की सदस्यता का नियम हिंदूहित से संबद्ध था। इस समिति का सदस्य बनने हेतु सबसे पहले हिंदू होना आवश्यक था या फिर जो व्यक्ति हिंदू चेतना का पक्षधर हो, वह समिति का सदस्य बन सकता था। डॉक्टर जी हिंदू होने के साथ-साथ हिंदू-चेतना के प्रबल पक्षधर थे जिस कारण वे इस समिति के सदस्य बनें। उनके अग्रजों में विशेष रूप से त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती जी का नाम उल्लेखनीय प्रतीत होता है जिन्हें मुजीबुर्रहमान जैसे हिंदुत्व के पक्षधर भी अपना गुरु मानते थे। अनुशीलन समिति के अंतर्गत मुजीबुर्रहमान व पुलीन बिहारी दास जी डॉक्टर जी के सहयोगी की भूमिका में थे। मुजीबुर्रहमान मुसलमान होते हुए भी हिंदू चेतना के पक्षधर होने के नाते अनुशीलन समिति के सदस्य बन सके थे।

चिंतन के इसी क्रम में वैवाहिक व्यवस्था को लेकर डॉक्टर जी की दृष्टि अत्यंत विचारणीय प्रतीत होती है। स्वयं के वैवाहिक जीवन को लेकर जो अत्यंत प्रेरणाप्रद विचार उन्होंने प्रकट किया था उसका उल्लेख शास्त्री जी की पुस्तक में भी हुआ है, "मेरी मृत्यु किसी

भी समय राष्ट्र का काम करते हुए हो सकती है। मैं कैसे किसी कन्या के भविष्य को अंधकारमय कर दूँ ?" [11] यह प्रश्नसूचक विचार किसी महान क्रांतिकारी का ही हो सकता है।

वर्ष 1920 में महात्मा गाँधी ने एक नारा दिया था "हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई"।[12] और इस विषय को ध्यान में रखते हुए उन्होंने हिंदुओं से आग्रह किया कि वे 'ख़िलाफ़त आंदोलन' में मुस्लिमों का सहयोग करें। किंतु, उसी महात्मा गाँधी ने डॉक्टर हेडगेवार द्वारा निवेदित तीन प्रस्तावों में से उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जिसमें उन्होंने 'गो-रक्षा' हेतु मुसलमानों के समर्थन का आग्रह किया था। महात्मा गाँधी का मानना था कि इससे मुसलमानों के मन को ठेस पहुँचेगी जो समय के अनुसार उचित नहीं है। जिस पूर्ण स्वतंत्रता की माँग को अस्वीकार करते हुए महात्मा गाँधी ने 'स्वराज्य' में उसे समाहित कर दिया था, डॉक्टर जी के उसी प्रस्ताव को जवाहरलाल नेहरू के सुझाव पर कांग्रेस द्वारा नौ वर्ष के पश्चात् रावी नदी के तट पर स्वीकार कर लिया गया। ऐसा इसलिए संभव हो सका, क्योंकि डॉ. केशव हेडगेवार एक साधारण परिवार से संबंध रखते थे और जवाहरलाल नेहरू अंग्रेजों के पिट्ठू मोतीलाल नेहरू के स्नेहशील पुत्र थे।

डॉक्टर हेडगेवार की दृष्टि केवल देशहित तक ही सीमित नहीं थी, अपितु वे विश्वचिंतक भी थे। जब बहुत से पददलित देश को पूँजीवादी शक्तियों से संरक्षित करने हेतु उन्होंने कांग्रेस के समक्ष आग्रहपूर्ण प्रस्ताव रखा, तो उन्हें बालक कहकर हँसी का पात्र बना दिया गया। उनकी दूरगामी दृष्टि का ही परिणाम है कि वर्तमान समय में भारत अनेक पददलित देशों का संरक्षक है। साधारणतःअनेक पुस्तकों में यह चर्चा मिलती है- 'हिंदू-मुस्लिम दंगे'। इस संदर्भ में आचार्य विष्णुकांत शास्त्री कहते हैं- "हिंदू-मुस्लिम दंगे -यह बात गलत है। मुस्लिम दंगे करने लगें, हिंदू पीटने लगें- मोपलास्थान में, कोहाट में, यहाँ तक कि स्वयं नागपुर में भी।[13] हिंदुओं के साथ मुस्लिमों ने कैसा व्यवहार रखा है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण संपूर्ण पाकिस्तान, बांग्लादेश, बंगाल, केरल और कश्मीर की घटनाएँ हैं जो शास्त्री जी के कथन को सत्यता प्रदान करती हैं।

विष्णुकांत जी ने डॉक्टर हेडगेवार द्वारा चलाए गए समाचार-पत्रों में 'स्वातंत्र्य' की चर्चा अपने पुस्तक में की है जो लगभग एक वर्ष तक चलने के उपरांत इसलिए बंद हो गया क्योंकि वह हिंदुत्व के विषय को समाज के सम्मुख रखता था। डॉक्टर जी ने जितने भी प्रस्ताव रखें और जो उन्होंने क्रांतिकारी कार्य किया उन सब से उन्हें कुछ सार्थक प्रतीत होता नहीं दिख रहा था, तब उनकी दृष्टि संगठन निर्माण की ओर उन्मुख हुई-

"सिर्फ बातों से भला कब बन सकी है बात?
शक्ति आवश्यक, यहाँ तो शक्ति का संघात।
सत्य तो यह, संगठन ही शक्ति का है उत्स
जो खड़ा हो प्रेम, निष्ठा, ध्येय पर अवदात।। [14]

हेडगेवार जी ने आत्मनिरीक्षण के उपरांत पाया कि केवल विषय रख देने भर से किसी समस्या का निदान नहीं हो पाता है। यदि अपने विचार को स्वीकार कराना हो तो 'शक्ति' का अर्जन अत्यंतावश्यक है और 'शक्ति' केवल एक व्यक्ति से नहीं, बल्कि संगठन से निर्मित होती है। हाँ, पहले किसी एक को अग्रसर होना होता है और अन्य सभी उसके साथ मिलकर 'शक्ति-निर्माण' में अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करते हैं।

कांग्रेस की स्थापना 1885 में हुई थी और आरंभ में जब हेडगेवार जी इससे जुड़ें थे तब इसका नेतृत्व लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक कर रहे थे जिस कारण इसके चिंतन का स्वरूप राष्ट्रीय-चेतना से ओत-प्रोत था, किंतु सन् 1920 में उनके स्वर्गवास के उपरांत जैसे ही उसका नेतृत्व महात्मा गाँधी करने लगें, स्वरूप पूर्णतः भिन्न हो गया। इसी कारण कुछ समय उपरांत डॉक्टर जी ने उसका त्याग कर केवल संगठन-निर्माण हेतु स्वयं को समर्पित कर दिया।

डॉक्टर जी महात्मा गाँधी से कई स्तरों पर मतभेद रखते थे। उन्होंने 'अहिंसा' को स्वीकार करते हुए भी उससे तारुण्य के दुर्बल होने के कारण उसे अस्वीकार कर दिया। देश की प्राथमिकता स्वाधीनता थी जिसके निमित्त अहिंसा के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर वे हिंसात्मक प्रवृत्ति को भी स्वीकार करते थे। इसी प्रकार उन्होंने खादी के संदर्भ में चरखे से निर्मित खादी को तो स्वीकृति दी, साथ ही औद्योगीकरण के महत्व को रेखांकित करते हुए उसे अपने देश के अंदर कारखानों एवं मीलों में निर्माण पर भी बल दिया।

डॉक्टर जी के मुस्लिम तुष्टिकरण का विरोध आज अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। महात्मा गाँधी ने मुसलमानों के कहने पर आफगानिस्तान के किसी कट्टरपंथी मुसलमान को हिंदुस्थान पर शासन करने का समर्थन किया था। इतिहास के इस कटु सत्य को छिपाया जाता रहा है, किंतु छुपाया जा नहीं सकता। इस संदर्भ में एक उक्ति ध्यान में आती है कि 'सत्य परेशान हो सकता है, किंतु पराजित नहीं'। महात्मा गाँधी की ओछी सोच के संदर्भ में यह उक्ति उचित प्रतीत होती है। ऐसा माना जाता है कि डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भी महात्मा गाँधी के इस हिंदू-मुस्लिम एकता वाले विचार का प्रतिरोध किया था। मौलाना मोहम्मद अली को कांग्रेस का प्रधान बना दिया गया और जैसे ही मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में 'वंदे मातरम' का गान आरंभ हुआ, मौलाना प्रस्थान कर गए। "वंदे मातरम इस्लाम विरोधी है, इसलिए वंदे मातरम बोलने में मैं शामिल नहीं होऊँगा।"[15] ऐसे घोर राष्ट्र-विरोधी कट्टर इस्लामिक चिंतक को महात्मा गाँधी ने कांग्रेस का प्रधान बना रखा था। कांग्रेसियों द्वारा ऐसे उपनामध्येय 'बापू' को हमारे देश में 'राष्ट्रपिता' की संज्ञा से विभूषित कर पूजनीय दृष्टि से देखा जाता है, यह विडंबना नहीं तो और क्या है ? किसी भी राष्ट्र का कोई व्यक्ति पुत्र हो सकता है क्योंकि उस राष्ट्र में उसने जन्म लिया होता है, न कि पिता। हाँ, यह बात अलग है कि भारत माता के अनेक सुपुत्रों के साथ कुछ कुपुत्र भी हुए हैं, आप अपनी दृष्टि के अनुसार महात्मा गाँधी को जहाँ भी चाहें रख सकते हैं।

कोहाट में पठान और मोपला लोगों ने जब केरल में हिंदुओं के साथ अत्याचार किया तो महात्मा गाँधी ने हिंदुओं से आग्रह किया कि मर जाना किंतु शस्त्र का प्रयोग नहीं करना। डॉक्टर जी ऐसे कायरतापूर्ण विचारों के पक्षधर नहीं थे। डॉक्टर जी मुसलमान के नहीं, बल्कि उनकी कट्टरता के विरोधी थे। कुछ ऐसे देशभक्त मुसलमान भी हुए हैं जिनसे उनका अत्यंत स्नेहपूर्ण भाव बंधा रहा है, जिनमें मौलवी लियाकत हुसैन जी का नाम अग्रणी रूप में लिया सकता है। वे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनुयायी थे और उन्होंने 'भगवा ध्वज' को ही राष्ट्रध्वज मानते हुए हिंदू-मुस्लिम एकता के केंद्र में भारतीय चेतना को स्वीकार किया था। इसी प्रकार एक निश्चित समय तक बैरिस्टर जिन्ना भी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी के सहयोगी होने के नाते समर्पित राष्ट्रभक्त मुसलमान थे और उन्होंने ख़िलाफ़त आंदोलन का खुलकर विरोध किया था। डॉक्टर जी मुसलमान का बहिष्कार स्वीकार नहीं करते थे, बल्कि उसके परिष्कार की चिंता करते थे और वह तभी संभव हो सकता था जबकि मुसलमानों में भारतीयता और हिंदुत्व के भाव समाहित हो जाएं। यह न केवल तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में विचारणीय है अपितु वर्तमान भारत में इसकी प्रबल आवश्यकता है।

'समर्थ हिंदू और सशक्त भारत' के विषय को ध्यान में रखते हुए डॉक्टर हेडगेवार की एक अद्भुत सूक्ति जो कि गुरु गोविंद सिंह जी से प्रभावित दृष्टिगत होती है, को शास्त्री जी ने अपनी कविता में अभिव्यक्त किया है-

जो किसी को भी न भय दे, भय न जाने आप
हाँ, जिसे लख देश-द्रोही कँपे अपने आप।।[16]

डॉक्टर जी का मानना था कि न तो हमें किसी के मन में भय उत्पन्न करना चाहिए और न ही किसी से भयभीत होना चाहिए। यह तभी संभव है जब आपको यह ज्ञात रहे कि आप अकेले नहीं, बल्कि संपूर्ण सामाजिक शक्ति आपके साथ है। भारतीयता अथवा हिंदुत्व इसी सामाजिक शक्ति के संगठनात्मक स्वरूप का प्रकटीकारण है जिसे हर एक व्यक्ति यदि आत्मसात कर लेता है तो हिंदू-मुस्लिम एकता का विवाद स्वयंमेव ही सुलझ जाएगा।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने हिंदुत्व को ही राष्ट्रीयत्व के रूप में स्वीकार करते हुए भारतीय संस्कृति की पहचान हेतु अनेक पौराणिक ग्रंथों की चर्चा की है। जवारलाल नेहरू का मानना था कि जो कोई भी हो चाहे वह मुसलमान हो, यहूदी हो, इसाई हो या फिर अन्य मतों को माननेवाला यदि वह स्वाधीनता हेतु अंग्रेजों का विरोध करता है तो वह राष्ट्रवादी कहलाएगा, किंतु ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। 'राष्ट्रीयत्व' एक भाव है जो किसी व्यक्ति के मन में तभी समाहित हो सकता है जबकि परंपरा से वह उसके साथ संबद्ध हो। भारतवर्ष की संस्कृति में यदि यहाँ के मूल निवासियों को ध्यान में रखकर उनके जीवन-यापन की चर्चा करें तो ज्ञात होता है कि हम सनातनी हैं। न तो हमारा आरंभ हुआ है और न ही अंत। परंपरागत अपनी संस्कृति को संरक्षित रखना ही हमारा कर्तव्य है और कहीं-न-कहीं यही कारण भी रहा है कि स्वयं जवाहरलाल नेहरू ने भी 'भारत की खोज' के दौरान वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, त्रिपिटक, जैनसूत्र जैसे ग्रंथों में निहित सांस्कृतिक ज्ञान के माध्यम से भारत को समझने-समझाने की बात की है। उन्होंने किसी प्रकार

के कुरान, हदीस, बाइबल आदि ग्रंथों की चर्चा क्यों नहीं की ? क्योंकि ये ग्रंथ हमारे देश के नहीं हैं। इसी संदर्भ में विष्णुकांत शास्त्री जी का विचार उल्लेखनीय बन पड़ता है कि, "हजारों वर्षों से भारत की जो संस्कृति चली आ रही है वह संस्कृति, वह सारी-की-सारी चेतना, मूलतः हिंदू चेतना है और उस चेतना को आधार मानकर ही हम भारत की पहचान कर सकते हैं। इसलिए भारत की राष्ट्रीयता हिंदू राष्ट्रीयता है।"17 इस विचार को शास्त्री जी ने डॉक्टर हेडगेवार के चिंतन के परिप्रेक्ष्य में ही प्रकट किया है।

भारतीय संस्कृति के संदर्भ में कहा जाता है कि वह मिश्रित संस्कृति है। इसमें अलग-अलग विचारों को मानने वाले समुदाय एक साथ रहते हैं। ऐसे ही, यह विविधता में एकता को लेकर चलने वाली संस्कृति है। किंतु, ऐसा कतई भी नहीं है। किसी बड़े महासागर में छोटी-छोटी नदियाँ जाकर मिल जाती हैं, छोटे-छोटे सागर जाकर मिल जाते हैं, तो क्या उस महासागर का नाम परिवर्तित हो जाता है? क्या हम उसके लिए मिश्रित सागरों और नदियों का महासागर शब्द प्रयोग में लाने लग जाते हैं? ऐसे ही गंगा नदी की अनेक सहायक नदियाँ हैं जिनके जल गंगाजल में मिश्रित हो जाते हैं और अंततः अपना वास्तविक स्वरूप खो कर गंगाजल में परिणत हो जाते हैं। इन उद्धरणों की भाँति ही अनेक मतों को मानने वाले छोटे-छोटे समुदाय के लोग हिंदुस्थान में रहते हैं, तो चूँकि वे बाह्य देशों की संस्कृति से आकर सनातन में मिश्रित हो गए हैं तो वह मिश्रित संस्कृति के नहीं, बल्कि सनातन संस्कृति के ही माने जाएँगे, क्योंकि गंगा में मिश्रित अन्य नदियों के समान ही वे भी सनातन संस्कृति में समाहित हो गए हैं। यह सनातन संस्कृति ही हिंदू संस्कृति अथवा हिंदुस्थान की संस्कृति को उद्भासित करती है। अतः भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए समुचित प्रतीत होता है कि राष्ट्रीयता यानि हिंदुत्व ही है। इसे ही वास्तव में 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' कहा जा सकता है जिसे केंद्र में रखकर ही आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक परम् पूजनीय डॉ. केशवराव बलिरामपंत हेडगेवार जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विष्णुकांत शास्त्री : रचना संचयन; चयन एवं संपादन : प्रेमशंकर त्रिपाठी, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष : 2024, पृ. 30-31

2. जीवन-पथ पर चलते चलते... : विष्णुकांत शास्त्री; संपादक : प्रेमशंकर त्रिपाठी, श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय प्रकाशन, कोलकाता, संस्करण वर्ष : 2017, पृ. सीआईआई

3. विष्णुकांत शास्त्री : रचना संचयन; चयन एवं संपादन: प्रेमशंकर त्रिपाठी, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष 2024, पृ. 9

4. वही, पृ. 9

5. वही, पृ. 8

6. मौलिक द्रष्टा एवं महान् संगठनकर्ता : डॉ. हेडगेवार; आचार्य विष्णुकांत शास्त्री; संपादक : नवल किशोर सिंह, डॉ. हेडगेवार जन्मशतवर्षपूर्ति उत्सव समिति प्रकाशन, कलकत्ता, संस्करण वर्ष : 1989, पृ. ग

7. संकलित कविताएँ : गोपाल सिंह 'नेपाली'; संपादक: नंदकिशोर नंदन, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष: 2013, पृ. 97

8. मौलिक द्रष्टा एवं महान् संगठनकर्ता : डॉ. हेडगेवार; आचार्य विष्णुकांत शास्त्री; संपादक : नवल किशोर सिंह, डॉ. हेडगेवार जन्मशतवर्षपूर्ति उत्सव समिति प्रकाशन, कलकत्ता,

संस्करण वर्ष : 1989, पृ. 1

9. वही, पृ. 3

10. वही, पृ. 4

11. वही, पृ. 5

12. वही, पृ. 6

13. वही, पृ. 8

14. जीवन-पथ पर चलते चलते... : विष्णुकांत शास्त्री; संपादक: प्रेमशंकर त्रिपाठी, श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय प्रकाशन, कोलकाता, संस्करण वर्ष : 2017, पृ. 9

15. मौलिक द्रष्टा एवं महान् संगठनकर्ता : डॉ. हेडगेवार; आचार्य विष्णुकांत शास्त्री; संपादक : नवल किशोर सिंह, डॉ. हेडगेवार जन्मशतवर्षपूर्ति उत्सव समिति प्रकाशन, कलकत्ता, संस्करण वर्ष : 1989, पृ. 12-13

16. जीवन-पथ पर चलते चलते... : विष्णुकांत शास्त्री; संपादक: प्रेमशंकर त्रिपाठी, श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय प्रकाशन, कोलकाता, संस्करण वर्ष: 2017, पृ. 10

17. मौलिक द्रष्टा एवं महान् संगठनकर्ता : डॉ. हेडगेवार; आचार्य विष्णुकांत शास्त्री; संपादक : नवल किशोर सिंह, डॉ. हेडगेवार जन्मशतवर्षपूर्ति उत्सव समिति प्रकाशन, कलकत्ता, संस्करण वर्ष : 1989, पृ. 20

रामकथा के आधुनिक शिल्पकार : नरेंद्र कोहली

डॉ.राहुल प्रसाद

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

रामकथा को भारतीय संस्कृति की अमरगाथा एवं मेरुदंड कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। राम के मिथक ने भारतीय मनीषा एवं भारतीय समाज को अत्यंत गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। हम देखते हैं एक उत्तम चरित्र के रूप में राम के चरित्र का जितना सृजनात्मक व्यवहार दिखाई देता है उतना किसी अन्य चरित्र का नहीं दिखाई देता। आदि कवि वाल्मीकि 'रामायण' से लेकर सद्य प्रकाशित उपन्यास 'महलों में वनवास' तक रामकथा का पुनराख्यान करने का लोभ साहित्यकार संवरण न कर सके। समकालीन संदर्भों में युगबोध से अनुप्राणित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में युगीन परिस्थितियों एवं मान्यताओं की परिकल्पना कर कथ्य को अलग-अलग रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप रामायण से लेकर 'अभ्युदय', 'अहल्या उवाच' और 'महलों में वनवास' तक के रामकथा के पात्रों ने समय एवं परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण किया है। रामकथा में वैदिक साहित्य से लेकर वर्तमान तक के भारतीय मानस को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक मूल्यों के प्रतिबिम्ब हैं। जिसमें प्रत्येक काल के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सांस्कृतिक एवं सौंदर्यबोध से युक्त प्रश्नों- प्रतिप्रश्नों, के हल खोजे जा सकते हैं।

राम के विकासोन्मुख चरित्र की सृजनता में प्रत्येक काल सहजता से समाहित हो जाता है। राम के व्यक्तित्व में विराटत्व के साथ-साथ मुख्य रूप से विद्यमान विश्वसनीयता साधारणता उन्हें लोकमानस की भूमि पर प्रतिष्ठित करती है। दैनिक व्यवहार में राम शब्द की परिव्याप्ति, अनेक लोककथाओं में रामकथा का रचनात्मक विनियोग एवं भारतीय परंपराओं, संस्कृति, विवाह इत्यादि शुभ पर्वों पर रामकथा का सहज समावेश, वैदिक साहित्य, जैन साहित्य और अधुनातन साहित्य में रामकथा की प्रमुखता एवं विकासोन्मुखता इसका सशक्त प्रमाण है।

हम देखते हैं रामकथा परम्परा में समय-समय पर अनेक परिवर्तन एवं परिवर्धन युग की आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ है। वैदिक युग में रामकथा का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। किंतु राम, दशरथ, सीता जैसे पात्रों का नामोल्लेख अवश्य दिखलाई पड़ता है। रामकथा का प्रचलित एवं निबद्ध रूप आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' में दिखाई देता है। बाद में कवियों की रामकथा का आधार वाल्मीकि 'रामायण' ही रहा है। तदुपरांत महाभारत में भी रामकथा के संकेत दिखाई देते है। इसके उपरान्त विष्णुपुराण, हरिवंश पुराण, एवं अन्य पुराण साहित्य रामकथा के उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं। परवर्ती साहित्य बौद्ध एवं जैन में भी अपने-अपने सम्प्रदाय के प्रचार प्रसार हेतु रामकथा के मिथक का खूब उपयोग किया गया। बौद्धों द्वारा रचित जातकों में

महात्मा बुद्ध को राम का अवतार घोषित किया गया। जैन एवं बौद्धों ने अपने धर्म एवं सिद्धांतों को लोकमानस में प्रचारित एवं प्रतिष्ठित करने के लिए रामकथा का आश्रय लिया गया।

रामकाव्य के महत्वपूर्ण कवि तुलसीदास से पूर्व भी कवियों ने अपने काव्यों में राम की महिमा का खूब वर्णन किया है। आदिकाल का महत्वपूर्ण महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में अवतारों के क्रम में रामावतार का वर्णन मिलता है। रासो ग्रन्थों के उपरांत रामकथा की महिमा का वर्णन रामानन्द कृत 'रामरक्षास्तोत्र' में मिलता है। निर्गुण भक्ति साहित्य के प्रवर्तक कबीरदास भी राम नाम से विलग नहीं रह पाए -

"कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउँ
गले राम की जेवड़ी जित खींचे तित जाऊँ।"[1]

भक्तिकाल में ही रामभक्ति के पुरोधा कवि तुलसीदास ने रामभक्ति की जो ज्योति जलाई परवर्ती साहित्यकारों ने उससे रामभक्ति का उत्स ग्रहण किया। मर्यादा के आवरण में आबद्ध तुलसीदास कृत 'श्रीरामचरितमानस' तद्युगीन सामंती वातावरण को तो अभिव्यक्त करता ही है साथ ही श्री राम को पूर्ण रूपेण मर्यादा पुरुष के रूप में भी प्रतिष्ठित करता है। तद्युगीन युगबोध का मूलाधार भक्ति ही था, और यही साध्य एवं साधन भी था। रामराज्य की परिकल्पना तुलसी के काव्य का मुख्य आदर्श रहा है। कवितावली खंडकाव्य में भी तद्युगीन सामाजिक विषमता से व्याप्त जीवन का स्पष्ट एवं मुखर चित्रण दिखाई देते हैं

आधुनिक युग पुनर्जागरण का युग है। युगीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन पर पश्चिमी देशों में विकसित ज्ञान विज्ञान एवं अनेक राष्ट्रीय आंदोलनों का व्यापक स्तर पर प्रभाव पड़ा। पुनर्जागरण से युक्त बौद्धिकता ने धर्म, अर्थ एवं समाज सभी को आवृत कर नवीन युगबोध के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इस बुद्धिवाद ने मात्र धर्म, अर्थ एवं समाज को ही नहीं अपितु साहित्यिक चेतना को भी गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। यही कारण है कि आधुनिक साहित्यकार अपने साहित्य में नारी जागरण, अछूतोद्धार, स्वदेशानुराग, स्वभाषाप्रेम, ग्रामीण जन-जीवन के प्रति अनुरक्ति एवं सभी मानवों के प्रति सहानुभूति रखने वाले राम को प्रतिष्ठित करते हैं। आधुनिक साहित्यकारों ने भारतीय संस्कृति को नए संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित करने का प्रयास किया। इसी क्रम में नरेंद्र कोहली ने रामकथा का परिवर्द्धन एवं पुनः संस्कार किया, एवं राम को मिथकों की बेड़ियों से निकालकर लोकमानस की भूमि पर प्रतिष्ठित करने का कार्य किया। मध्यकालीन राम साहित्य में उपासना के आलंबन मात्र में राम के चरित्र का परिसीमन हो जाने के कारण सृजनात्मक स्तर पर राम के व्यक्तित्व का और जीवनानुभवों का उपयोग प्रायः कम हुआ है। किन्तु आधुनिक युग में समस्याओं के निदान हेतु नरेंद्र कोहली ने राम के चरित्र का व्यापक उपयोग किया गया है। जैसे रामकथा की तार्किक एवं बुद्धिसंगत व्याख्या और आधुनिक जीवन दृष्टि हेतु रामकथा का रचनात्मक विनियोग। कथानक के पारंपरिक ढाँचे को बुद्धिसंगत तथा युगानुरूप बनाने के लिए लेखक ने उसमें पर्याप्त परिवर्तन किया है। इस परिवर्तन को अग्रलिखित बिन्दुओं के रूप में देख सकते हैं - रामकथा की चमत्कारपूर्ण, अलौकिक, अविश्वसनीय एवं अति प्राकृतिक घटनाओं की तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक व्याख्या कर के लेखक ने या तो उन घटनाओं के मूल स्वरूप में परिवर्तन किया है या उनका तार्किक कारण प्रस्तुत किया है। 'अभ्युदय' उपन्यास में धनुष भंग, हनुमान द्वारा सागर निस्तरण, अग्नि परीक्षा प्रसंग, राम-रावण युद्ध प्रसंग आदि इसी प्रकार की घटनाएँ हैं। नारी जागरण का प्रभाव भी कोहली जी के उपन्यासों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'अभ्युदय' उपन्यास की सीता राष्ट्र

सम्बन्धी पहलुओं पर अपने विचार प्रकट करती है, और वनवास की अवधि में वनवासियों को अक्षर ज्ञान के साथ-साथ उन्हें शस्त्र शिक्षा का भी ज्ञान कराती है।

आधुनिक युग अनेक सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के विश्लेषण का भी युग है। समसामयिक चिंतन को कथाबद्ध करने हेतु उपन्यासकार ने कथा के विशिष्ट संदर्भों को लेकर कथा की पुनर्व्याख्या की है। रामकथा आधारित हिंदी उपन्यास 'अभ्युदय' केवल राम रावण की कथा पर ही केंद्रित नहीं हैं अपितु युगीन प्रश्नों पर उपन्यासकार की चिंता अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है। सहित्य सृजन, कलाकर का दायित्व, राम रावण युद्ध की नवीन व्याख्या, भारत भूमि की महत्ता, विवाह संस्था, पुनर्विवाह, विधवा विवाह, गरीब वंचितों के प्रति मानवीयता, विश्व बंधुत्व, मानव कल्याण, और युद्ध जैसे प्रश्नों पर यहाँ लेखकों ने नए रूप से विचार किया है। 'अभ्युदय' उपन्यास की नवीनता एवं मौलिकता को रेखांकित करते हुए अजय कुमार पटनायक लिखते हैं- "इस कथा के विभिन्न प्रसंगों से गुजरते हुए लेखक ने विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं, जनसाधारण के शोषण, बुद्धिजीवियों के कर्तव्य समाज में नारी का स्थान, स्त्री पुरूष सम्बन्ध, जाति और वर्ण की विभीषिकाओं, लोलुप और स्वार्थी बुद्धिजीवियों, शासनाधिकारियों आदि विषयों के सन्दर्भ में अत्यंत क्रांतिकारी विश्लेषण किया है और अपनी मान्यताओं के सहारे एक प्रख्यात कथा को पूर्णतः मौलिक तथा आधुनिक उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है।"[2]

'अभ्युदय' के रचनाकार नरेंद्र कोहली ने रामकथा में 'रामचरितमानस' की कई विसंगतियों की भी चर्चा करते हैं। कोहली जी ने राम को अवतार के रूप में नहीं देखा अपितु एक मानवीय चरित्र के रूप में व एक जनवादी नेता के रूप में देखा है। जो सामंतवादी एवं पूंजीवादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। कोहली जी लिखते हैं -"मुझे राम ने एक जनवादी समता तथा न्याय पर आधृत चेतना दी थी। सामंती और पूंजीवादी नैतिकता के ध्वजवाहक दिखे थे। अहल्या के चरण छूने वाले, अज्ञात कुलशीला सीता से विवाह करने वाले, निषाद को गले लगाने वाले, राम को जाति सम्प्रदाय तथा आध्यात्म की श्रृंखलाओं में बंधे देख पीड़ा का ही अनुभव हुआ था। अतः मेरे सम्मुख रामकथा लिखने के सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं था।"[3]

विभिन्न पौराणिक कथाओं में शिव को अद्भुत शस्त्रों का निर्माता स्वीकार किया गया है। जब कोई योद्धा किसी असाधारण शस्त्र को प्राप्त करना चाहता है वह शिव की आराधना करता है, और उनसे कोई न कोई अद्भुत शस्त्र प्राप्त कर लेता है। पुराणों में शिव सामान्य राजाओं, राज्यों तथा व्यावसायिक शस्त्र निर्माताओं से कहीं उत्कृष्ट कोटि के शस्त्र निर्माता चित्रित हुए हैं। इसी संदर्भ में जनक के पास भी शिव का धनुष रखा हुआ है जो किसी योद्धा से परिचालित नहीं होता। तुलसीदास ने इस धनुष को सामान्य धनुष के रूप में चित्रित किया है। वह इतना भारी है कि दस सहस्त्र राजा उसे एक साथ उठाने का प्रयत्न करते हैं; तो भी वह उनसे हिलाए नहीं हिलता -

"भूप सहस दस एक ही बारा लगे उठावन टरे न टारा।
डगइ न संभु सरासनु कैसे कामी वचन सती मनु जैसे ॥"[4]

राम उस धनुष को अकेले ही सहज रूप से उठा लेते हैं। यह गुरुत्वाकर्षण के नियम का भी उल्लंघन है। त्रिगुणात्मक प्रकृति के स्वामी के रूप में राम कार्य कारण् के नियम के बाहर भी कर्म कर सकते हैं। किंतु मनुष्य रूप में यह सम्भव नहीं लगता। आगे नरेंद्र कोहली लिखते हैं -"आगे मेरा मन इसे ठीक इसी रूप में स्वीकार नहीं करना चाहता। वाल्मीकि उस धनुष को लोहे की

बहुत बड़ी पेटी में रखा हुआ बताते हैं। जिसे धकेलकर लाने में सैकड़ों मनुष्य तथा पशु पसीना पसीना हो गए। मैंने इस धनुष पर समकालीनता का कुछ आरोपण कर उसकी टैंक के समान किसी यंत्र के रूप में कल्पना की है। जिसके परिचालन के लिए युक्ति, अभ्यास, ईंधन, तथा बल सबकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार करने के कुछ कारण हैं।"[5]

समसामयिक घटनाएं भी किस प्रकार कई बार रचना के लिए आधार भूमि का निर्माण करती हैं, उसे कोहली जी के इस कथन द्वारा समझा जा सकता है 'नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि रामकथा की घटनाओं की पुनरावृत्ति मेरे मन में लगातार हो रही थी। दिन के किसी न किसी कालखंड में मेरा मन उन घटनाओं का चर्वण भी करता था और मैं यह अनुभव करता था कि अनेक स्थानों पर मेरा मन तुलसीदास द्वारा चित्रित उन घटनाओं के साथ तादात्म्य नहीं कर पाता। उन चरित्रों को मैं उसी रूप में नहीं देख पाता। जिसमें तुलसी उनका चित्रण करते हैं। तुलसीदास के लिए वह सारी कथा आध्यात्म के रंग में रंगी हुई थी, और मेरा मन आध्यात्म से परिचित ही नहीं था। मैं अध्यात्म को सर्वथा एक ओर कर उन घटनाओं को अत्यंत लौकिक धरातल पर ग्रहण कर उनका भौतिक अर्थ ही करता था। 1971 ई.में बांग्लादेश की स्वतंत्रता का युद्ध हुआ । उस युद्ध में मेरी गहरी रुचि थी। इसीलिए उसके संबंध में समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाली सूचनाओं को मैं बहुत रुचि से पढ़ता था। उसी सन्दर्भ में समाचार पत्रों में यह भी छपा था कि पाकिस्तानी सेना अत्यंत व्यवस्थित ढंग से सूचियाँ बना बनाकर बांग्लादेश के बुद्धिजीवियों की हत्या कर रही थी । आगे नरेंद्र कोहली लिखते हैं तब पहली बार समझ में आया कि रावण के नेतृत्व में राक्षस दंडक वन के ऋषियों का मांस क्यों खा रहे थे। अब तक ऋषियों के वध की घटनाएँ राक्षसों की क्रूरता को चित्रित करने का साधन मात्र थी, किन्तु अब वे मानव समाज के दलित वर्ग को पिछड़ा बनाए रखने के लिए उसे बौद्धिक नेतृत्व से वंचित कर के क्रूर षडयंत्र की प्रतीक थी। अब वे घटनाएं पौराणिक युग के किसी कथा की विचित्र कड़ियाँ न होकर हमारे अपने युग का यथार्थ हो गई थीं। वे घटनाएं मेरे लिए मात्र सूचनाएं न होकर मेरी संवेदना का अंग हो गयी थी। बचपन से सुनी और पढ़ी हुई रामकथा की घटनाएं कुछ-कुछ जीवंत होने लगी थी। और उनमें से मानवता के शाश्वत संघर्ष के कुछ नए अर्थ खुलने लगे थे। प्रेम जनमेजय लिखते हैं -"सिद्धाश्रम में राक्षसों के आतंक का रोमांचित प्रसंग, आश्रमवाहिनी का निर्माण, मानवीय कल्याण तथा शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध चिंतन के आलोक में विश्वमित्र द्वारा राम को दी गयी शिक्षा में चिंतन और कर्म के समन्वय की अवधारणा, अहिल्या प्रसंग की तार्किक व्याख्या आदि ऐसे प्रसंग थे जिन्होंने मेरे प्रगतिशील युवा मन को अत्यधिक प्रभावित किया था। पौराणिक और सांस्कृतिक मूल्यों की इस आधुनिक तार्किक और बौद्धिक राजनीतिक व्याख्या ने चमत्कृत कर दिया था। पहली बार किसी ने राम-कथा को औपन्यासिक शिल्प में सशक्त रूप में बांधा था।"[6]

बीसवीं शताब्दी के पटल पर दो विश्व युद्धों की क्रूरतम अभिव्यक्ति हुई है। इस व्यापक नर संहार के व्यामोह में एक ओर तो मानवीय बोध के धरातल पर युद्ध के प्रति घोर वितृष्णा पैदा की है वही दूसरी ओर ऐसे सार्थक प्रयासों की श्रृंखला भी जारी हुई है, जिनसे समाज में मानवता, सद्भावना और समता कायम किए जा सके। इसीलिए मानव की दूरगामी सोच एवं विश्वमैत्री व सद्भाव को स्थापित करने के लिए विश्वयुद्ध के पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई और यह आशा व्यक्त की गई कि भविष्य में यह संस्था विश्व में शांति की स्थापना करेगी और मानव मात्र को युद्ध की विभीषिका से मुक्ति दिलाएगी। 'अभ्युदय' उपन्यास में एक स्थल पर राम कहते हैं -"युद्ध की सम्भावना जिस दिन समाप्त हो जाएगी वह मानव इतिहास के लिए गौरव का दिन होगा।"[7] साहित्य का सच्चा धर्म परिवेश के यथार्थ चित्रण में है। साहित्य समाज की व्यवस्था के विविध पक्षों पारिवारिक संबंधों, वर्ग संघर्षों एवं अन्य

प्रकार की घटनाओं का चित्रण करता है। रामकथा आधारित हिंदी उपन्यासों में भी समाज की बहुविध समस्याओं का अनेक रूपों में चित्रण दिखलाई पड़ता है। यहाँ उपन्यासकार एक ओर तो जीवन की विसंगतियों को उजागर करने का प्रयास करता है वहीं दूसरी ओर वह समाज की सड़ी गली मान्यताओं एवं परंपराओं जो कि अब रूढ़ हो चुकी हैं, उन्हें भी उखाड़ फेंकने की बात करता है। 'अभ्युदय' उपन्यास में प्रकारांतर कथा के माध्यम से नरेंद्र कोहली इस प्रकार की कुरीतियों पर प्रहार करने की भरपूर चेष्टा करते हैं उपन्यास में ऋषि अगस्त्य का यह कथन रूढ़ियों पर करारा प्रहार करता हुआ दिखाई देता है -"वानरों का अपने पुरोहितों में पीढ़ियों का संचित अटूट विश्वास था। यदि अगस्त्य कहंगे कि पुरोहित झूठा है और अपने स्वार्थ के कारण सारी जाति की प्रगति में रोड़ा अटकाए बैठा है, तो वानर उनमें पूर्ण आस्था होते हुए भी सहज ही उनका विश्वास नहीं करेंगे।...अगस्त्य जानते थे कि उनका देवता मिथ्या था, किन्तु उन्हें वानरों की भावना का सम्मान करना होगा। उनकी भावना का अपमान नहीं कर सकते उन्हें धैर्यपूर्वक उस अवसर की प्रतीक्षा करनी होगी जब वे वानरों को उनके नेताओं तथा देवताओं की वास्तविकता समझा सकें। इस समय वे लोग वास्तविकता समझने की मनःस्थिति में नहीं हैं।"[8]

मानव समाज की प्रगति में सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा की भूमिका होती है। बिना शिक्षित हुए समाज आगे नहीं बढ़ सकता। स्वतंत्रता के उपरांत भी हम देखते हैं शिक्षा पद्धति को सर्वग्राही एवं सर्वसुलभ बनाने हेतु अनेक योजनाएं लागू की गई। आज भी निरन्तर सरकार द्वारा शिक्षा व्यवस्था पर अनिवार्य रूप से जोर दिया जा रहा है। शिक्षा नीतियों में समयानुसार परिवर्तन किए जा रहे हैं। सरकारी आय का बड़ा हिस्सा शिक्षा व्यवस्था पर खर्च किया जा रहा है ताकि भारत का हर वर्ग शिक्षित हो, बेटी बचाओ- बेटी पढ़ाओ, सब बढ़ें -सब पढ़े जैसी योजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा है, जिससे समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार किया जा सके एवं उन्हें हर क्षेत्र में अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराने का अवसर प्राप्त हो सके। रामकथा आधारित हिंदी उपन्यासों में भी उपन्यासकारों ने इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया है एवं शिक्षा को उपन्यास में केंद्रीय विषय के रूप में रेखांकित करने का प्रयास किया है। 'अभ्युदय' उपन्यास में लेखक ने शिक्षा व्यवस्था पर सूक्ष्म एवं नवीन दृष्टि डाली है। यहाँ उपन्यासकार के मौलिक चिंतन ने शिक्षा व्यवस्था को नयी दिशा प्रदान की है। जिससे वर्तमान प्रतिभा के पलायन को रोका जा सके। उपन्यास में सुग्रीव सभा को संबोधित करते हुए कहते हैं -"आज से मंत्रियों, सामंतों, यूथपतियों तथा धनिकों के पुत्रों के अध्ययन के लिए विदेश जाने की प्रथा बंद की जाती है।. किष्किन्धा का राज्य अब शिक्षा और विद्याध्ययन के लिए नयी निति का अनुसरण करेगा। सर्वप्रथम किष्किन्धा में एक बड़ा शिक्षा संस्थान स्थापित किया जाएगा, जिससे विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ युद्ध तथा आयुद्ध शास्त्र का भी अध्ययन अध्यापन तथा व्यावहारिक अभ्यास भी होगा। उसी प्रकार उसमें आयुर्विज्ञान, का अध्ययन अध्यापन होगा। अन्य सामान्य विषय तो होंगे ही। उसकी विस्तृत योजना के निर्माण के लिए हनुमान, नल, नील, राजकुमार अंगद, तार, मैंद, तथा द्विविद की एक समिति बनाई जाए।"[9]

आधुनिक युग के नारी जागरण आंदोलनों के परिणामस्वरूप नारी पात्रों में कर्मण्यता, निर्णय क्षमता, वीरत्व तथा समत्व इत्यादि का स्पष्ट उल्लेख दिखलाई पड़ता है। आधुनिक युग में नारी का सौंदर्य अब अंगों के लालित्य में नहीं बल्कि जीवन के उन्मुक्त एवं प्रत्येक क्षेत्र की कर्मठता में निहित है। यहाँ उपन्यासकारों ने उन्हें श्रम की प्रतिष्ठा के रूप में चित्रित किया है। वर्तमान नारी अबला नहीं अपितु सबला है। उसके वीरांगना रूप का भी मुखरता से वर्णन किया गया है। रामकथा का अत्यंत महत्वपूर्ण प्रसंग 'अग्नि

परीक्षा'सीता से सम्बंधित है। यह एक ऐसा प्रसंग है जो राम के व्यक्तित्व को क्षण भर के लिए सही किन्तु धूमिल अवश्य कर देता है। आज के समय में पवित्रता-अपवित्रता, तथा अग्नि परीक्षा जैसे संदर्भ न तो प्रासंगिक हैं और न ही सहज ही ग्राह्य हो सकते हैं। रामकथा आधारित हिंदी उपन्यासों में इस समूचे प्रसंग को लेखकों ने अत्यंत सूझबूझ के साथ नए सन्दर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। नरेंद्र कोहली के 'अभ्युदय' उपन्यास में अग्नि परीक्षा का वर्णन नहीं है, रावण वध के उपरांत विभीषण और हनुमान सीता को राम के समक्ष प्रस्तुत करते हैं तो राम सीता को देखकर कहते हैं -"आओ सीते! राम ने अपने हाथ बढ़ाये अपने राम से अब और दूर नहीं रहो। एक वर्ष की दीर्घ अग्नि परीक्षा दी है तुमने। अब तुम्हें कुछ सुख भी मिलना चाहिए।"[10] राम सीता की आँखों में देखते हैं सोचते हैं कि अब भी सीता की आंखों में वैसा ही स्वच्छ निर्दोष सम्मोहन था जिस पर कि राम रीझते हुए नहीं तक रहे थे। सीता भी राम को अपलक नजरों से निहार रही थी। सतीत्व के प्रश्न पर राम सीता से कहते हैं -"सतीत्व मन से होता है मेरी प्रियत्तमा शरीर से नहीं। किसी व्यक्ति को घाव लग जाए उसकी भुजा या टांग कट जाए तो वह पतित या चरित्रहीन नहीं हो जाता।"[11]

आधुनिक युग विशेष रूप से नारी जागरण का भी युग है। आज कदाचित कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ महिलाओं की सक्रिय हिस्सेदारी न हो। साहित्य में भी वह केंद्रीय पात्र के रूप में स्थान बना रही है। अब नारी अपने व्यक्तित्व की निजता के साथ सामने आ रही है। मध्य युग में नारी को नरक का द्वार कहा गया और मोक्ष के लिये बाधा माना गया । वहीं आज नारी हर क्षेत्र में बौद्धिक नेतृत्व प्रदान कर रही है। यही कारण है कि इन उभरते विमर्शों का रामकथा आधारित हिंदी उपन्यासों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। उपन्यासकार की नारी चेतना मुखर रूप से उपन्यासों के माध्यम से दृष्टिगत हो रही है।

'अभ्युदय' उपन्यास में लेखक ने शिक्षा व्यवस्था पर सूक्ष्म एवं नवीन दृष्टि डाली है। यहाँ उपन्यासकार के मौलिक चिंतन ने शिक्षा व्यवस्था को नयी दिशा प्रदान की है। जिससे वर्तमान प्रतिभा के पलायन को रोका जा सके । उपन्यास में सुग्रीव सभा को संबोधित करते हुए कहते हैं -"आज से मंत्रियों, सामंतों, यूथपतियों तथा धनिकों के पुत्रों के अध्ययन के लिए विदेश जाने की प्रथा बंद की जाती है ।. किष्किन्धा का राज्य अब शिक्षा और विद्याध्ययन के लिए नयी निति का अनुसरण करेगा। सर्वप्रथम किष्किन्धा में एक बड़ा शिक्षा संस्थान स्थापित किया जाएगा, जिससे विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ युद्ध तथा आयुद्ध शास्त्र का भी अध्ययन अध्यापन तथा व्यावहारिक अभ्यास भी होगा। उसी प्रकार उसमें आयुर्विज्ञान, का अध्ययन अध्यापन होगा । अन्य सामान्य विषय तो होंगे ही । उसकी विस्तृत योजना के निर्माण के लिए हनुमान, नल, नील, राजकुमार अंगद, तार, मैंद, तथा द्विविद की एक समिति बनाई जाए ।"[12]

शिक्षा के दृष्टिकोण को नए अर्थों में प्रस्तुत करते हुए तथा विदेश जाने के निषेध पर सुग्रीव कहते हैं - "जब अपने देश का धन व्यय कर शिक्षा के लिए किसी को भेजना ही है, तो विदेश वे लोग जाएँ जो उसके योग्य हैं, जो अपने देश में उपलब्ध शिक्षा साधनों का लाभ उठा चुके हैं,और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनका विदेश जाना आवश्यक हो गया है। दूसरे धन की शक्ति के कारण अयोग्य लोग विदेश जाकर अपने देश का अपयश फैलाएं तथा लौटकर विदेशी ज्ञान की धौंस से अपने देश के योग्य व्यक्तियों के शीर्ष पर प्रतिष्ठित हों, यह अनुचित है।"[13]

रामकथा आधारित हिंदी उपन्यासकार शिक्षा को लेकर विशेष सजग दिखलाई पड़ते हैं। यहाँ समाज में आए महत्वपूर्ण बदलाव एवं शिक्षा के प्रति लोगों की बढ़ती जागरूकता तथा उसके महत्व को उपन्यासकारों ने रेखांकित करने का प्रयास किया है।

आज हम देखते हैं माता पिता यदि किन्हीं कारणों से शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते किन्तु वे अपने बच्चों को अवश्य शिक्षित करना चाहते हैं। हमारे ही आस-पास ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं जहाँ हम देखते हैं, एक ऑटो ड्राइवर या सब्जी इत्यादि की रेहड़ियां लगाने वालों के बच्चे आई.ए.एस. जैसी बड़ी परीक्षाएँ पास कर लेते हैं। यह सब समाज में शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता का ही परिणाम है। इन्हीं बदलावों को उपन्यासकारों ने बड़ी सूक्ष्मता एवं गहराई से विश्लेषण करने का प्रयास किया है। 'अभ्युदय' उपन्यास में सीता का यह कथन इस बात को और भी अधिक प्रमाणित करता है - "ऋषि को किसी एक चिंतन क्षेत्र में सीमित करना भूल है शुभबुद्धि ! सीता बोली ऋषि ज्ञान विज्ञान की प्रत्येक शाखा में प्रादुर्भूत होते हैं। और यदि हम ऋषि की तुम्हारी परम्परावादी जड़ व्याख्या मान भी लें तो मै कहना चाहूंगी कि स्वयं भूखे मरने वाले ऋषि से कई लोगों का पेट पालने वाला धातुकर्मी कहीं अधिक पूज्य है। शिक्षा का कोई एक सार्वभौम सर्वकालिक रूप नहीं हो सकता। प्रत्येक देश काल में हमें उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना पड़ता है। अब जैसे हमने खनिज के उत्पादन शोधन तथा उससे अन्य वस्तुओं के निर्माण पर आधृत एक नवीन शिक्षा प्रणाली का विकास किया तो इन निर्धन तथा पिछड़े हुए क्षेत्र को उसके माध्यम से आत्मनिर्भर बनाने में सहायता तो मिलेगी किन्तु उसमें कुछ समय लगेगा...कुछ स्थानीय उद्योगों को प्रोत्साहित करना होगा।"[14] 'अभ्युदय' उपन्यास में ही शिक्षा व्यवस्था, उसके कार्यान्वयन, उसकी रूप रेखा तथा उसकी उपयोगिता जैसे विषयों पर उपन्यासकार विचार करते हुए उस पर चर्चा करता है- "इसीलिए अगस्त्य ने ग्राम में ही पाठशाला चलाने का प्रस्ताव रखा था। जहाँ-जहाँ कार्य चल रहा हो उसी के निकट कहीं शिक्षा की व्यवस्था कर दी जाए ताकि न तो शिक्षा में व्यतिक्रम हो और न शिक्षा और कृषि कर्म में विरोध पनपे। यह निश्चित था कि इस प्रकार की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए अगस्त्य को अपने आश्रम से पर्याप्त समय के लिए दूर रहना होगा। उस सारे समय के लिए आश्रम का दायित्व उन्होंने लोपामुद्रा पर छोड़ देने का निश्चय किया।"[15]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रामकथा आधारित हिंदी उपन्यास 'अभ्युदय' में लेखक ने तत्कालीन एवं वर्तमान समाज की स्थितियों का चित्रण करने और कथा समसायिक बनाने के लिए अनेक नवीन पात्रों की सृष्टि की है। ये सभी पात्र वर्तमान समाज की विसंगतियों को चित्रित करने तथा उन पर प्रहार करने की भरपूर चेष्टा करते हैं। नवीन पात्रों की सृजना में कथा क्रम न तो अवरुद्ध होता है और न ही कथा कहीं बोझिल लगने लगती है। अपितु नए पात्रों की परिकल्पना में लेखक की सृजनात्मकता ही दृष्टिगोचर होती है। रामकथा आधारित हिंदी उपन्यास में पात्रों का सामयिक मूल्यांकन कर उन्हें वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। पात्रों के चरित्र चित्रण में सहजता, सजीवता, नवीनता, क्रांतिकारी आदि गुणों का समावेश किया गया है। उपन्यास के प्रंसग, पात्र एवं कथानक पौराणिक होते हुए भी वर्तमान युग और परिवेश को उजागर करते हैं। विवेच्य उपन्यास की कथा में वर्णित प्रसंग आधुनिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, नारी विषयक, समाज सुधार आदि के कार्यों की यथास्थिति को प्रस्तुत करते हैं। साथ ही साथ देश की भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था की झलक भी उपन्यास में केन्द्रीयता के साथ उभरी है। विश्वामित्र के सिद्धाश्रम में हो रहे राक्षसों के अत्याचार आदि की घटना सम्बधी प्रसंगों, जम्बूद्वीप में रावण के बढ़ते आतंक एवं राक्षसी उपनिवेश को रोकने में आर्य राजाओं की विफलताओं जैसे प्रसंग आदि में स्वतंत्र्योत्तर राजनीतिक यथार्थ की झलक देखने को मिलती है। वहीं अयोध्या में चल रहे घटनाक्रम, रजनीतिक षडयंत्र, सत्ता का तानाशाही स्वरूप जैसे प्रसंग आपातकालीन तानाशाही के वीभत्स स्वरूप को प्रकट

करता है। नरेंद्र कोहली ने रामकथा को आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया है और यह उपन्यास पौराणिक कथानक पर आधारित होते हुए भी अपने वर्तमान से पूर्णतया अनुस्यूत हैं।

संदर्भ -:

1. श्यामसुन्दरदास, (संपादक), 'कबीर रचनावली', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ संख्या -156
2. जनमेजय प्रेम, (संपादक),'नरेंद्र कोहली एक मूल्यांकन' सामायिक बुक्स, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या -137
3. कोहली, नरेंद्र, 'मेरे राम : मेरी रामकथा', वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या-15
4. तुलसीदास, 'श्रीरामचरितमानस' विशिष्ट संस्करण सचित्र, सटीक,मंझला साइज, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण संवत् 2069, उन्नीसवां पुनर्मुद्रण, चौपाई एक, पृष्ठ संख्या -214
5. कोहली, नरेंद्र, 'मेरे राम : मेरी रामकथा' वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या-36
6. जनमेजय प्रेम, (संपादक),'नरेंद्र कोहली एक मूल्यांकन' सामायिक बुक्स, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या-147
7. कोहली, नरेंद्र, 'अभ्युदय' (खंड एक), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2013, पृष्ठ संख्या - 551
8. वहीं, पृष्ठ संख्या- 565-566.
9. वहीं, पृष्ठ संख्या -93-94
10. कोहली, नरेंद्र, 'अभ्युदय' (खंड दो), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2013, पृष्ठ संख्या – 609
11. वहीं, पृष्ठ संख्या -613
12. वहीं, पृष्ठ संख्या 93-94
13. वहीं, पृष्ठ संख्या -100
14. कोहली, नरेंद्र, 'अभ्युदय' (खंड एक), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2013, पृष्ठ संख्या – 469
15. वहीं, पृष्ठ संख्या -394

अंतर्दृष्टि

ISSN: 2583-391X

स्वामी विवेकानन्द के विचारों में निहित भारतीय शिक्षा दर्शन के तत्त्व

डॉ. कामना विमल शर्मा
सहायक प्रवक्ता,
दौलतराम महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

समकालीन भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली के विरोध में नवीन भारतीय शैक्षिक सिद्धान्तों पर आधृत विचारधारा स्थापित करने वाले दार्शनिकों में आधुनिक भारत के महान् विचारक स्वामी विवेकानंद का नाम प्रमुख है। विवेकानंद शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को अभावात्मक बताते थे, जिनके विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति का ज्ञान नहीं हैं, उन्हें जीवन के वास्तविक मूल्य का पाठ नहीं पढ़ाया जा सकता है, तथा उनके अंदर अध्ययन कार्य के लिए श्रद्धा का भाव भी जागृत नहीं किया जा सकता है। स्वामी जी के अनुसार यदि भारत पिछड़ा है, तो मुख्य दोष शिक्षा पद्धति का है। यह शिक्षा न तो उत्तम जीवन जीने की तकनीकी प्रदान करती है और न ही बुद्धि का नैसर्गिक विकास करने में सक्षम है।

स्वामी जी की शिक्षा पद्धति में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दोनों विचारधारा का समन्वय है। वे स्वदेशी के प्रबल समर्थक थे और वैज्ञानिक शिक्षा के पक्षधर थे। जहाँ उन्होंने एक ओर भारत को विज्ञान अपनाने के लिए कहा वहीं दूसरी ओर ब्रह्मचर्य एवं आध्यात्म के प्राचीन आदर्शों की शिक्षा को महत्व दिया गया है। साथ ही, स्वामी विवेकानन्द ने पाठ्यक्रम निर्माण में साहस, आत्मविश्वास, एकाग्रता, अनाशक्ति तथा उच्च नैतिक चरित्र के गुण निर्माण करने पर विशेष रूप से ध्यान दिया है।

उनके शैक्षिक दर्शन के आधार भारतीय वेदांत या उपनिषद ही रहे हैं। मानव के उत्थान से समाज का सर्वांगीण विकास होता है। और मानव का पतन होने से समाज का भी पतन हो जाता है। विवेकानंद जी ने मानव व समाज में दोनों में समरस संतुलित विकास को ही शिक्षा का प्रमुख केन्द्र माना है। स्वामी जी के अनुसार प्रत्येक शिशु में असीम ज्ञान एवं विकास की संभावनाएँ हैं एवं शिक्षा द्वारा इन सभी शक्तियों को प्राप्त किया जा सकता है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार, "मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णतः की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है" – सच्ची शिक्षा वह है, जिससे मनुष्य की मानसिक एवं शारीरिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास हो। वह शब्दों या वर्ण को रटने की प्रवृत्ति पर जोर नहीं देते थे, वरन वह मानसिक शक्तियों के विकास पर जो देते थे जिससे व्यक्ति कठिन परिस्थितियों में अपने विचार विनिमय के माध्यम से समस्याओं का हल निकालने में समर्थवान हो सकें।

वर्तमान सूचना और प्रौद्योगिकी पर आधारित परिवेश में स्वामी जी का चिंतन परम आवश्यक हो जाता है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा को पवित्रतम प्रक्रिया माना गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने ज्ञान को पवित्रतम घोषित किया है- ‘‘न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।’’

महाभारत में कहा गया है- ''नास्ति विद्यासमं चक्षुः'' अर्थात् विद्या के समान कोई दूसरा नेत्र नहीं होता। भारतीय दर्शन में अज्ञान को अंधकार और ज्ञान को प्रकाश माना गया है। अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना शिक्षा का प्रमुख कार्य है। डॉ. अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने प्राचीन भारतीय शिक्षा के संदर्भ में लिखा है-''प्राचीन भारत में शिक्षा अन्तर्ज्योति और शक्ति का स्रोत मानी जाती थी। जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के संतुलित विकास से हमारे स्वभाव में परिवर्तन करती तथा उसे श्रेष्ठ बनाती है। इस प्रकार शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि हम समाज में एक विनीत और उपयोगी नागरिक के रूप में रह सके (अल्तेकर, 1958)।

शिक्षा मानव जीवन की आध्यात्मिक प्रक्रिया :- शिक्षा जीवन का विकास है। भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन का अधिष्ठान अध्यात्म है। अध्यात्म का संबंध आत्मा से है। आत्मा मनुष्य की सत्ता का अन्तरतम मर्म है। भारतीय चिंतन में आत्मा को मन, बुद्धि, इन्द्रियों एवं अहंकार से परे माना हैं। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि आत्मा की शक्ति से ही प्रेरित होती है। आत्मा के प्रकाश से ही वे विषयों के अधिगम में समर्थ होती हैं। आत्मा समस्त ज्ञान का आधार है। शिक्षा मुख्यतः ज्ञान की साधना है। ज्ञान चेतना का विकास है। इस प्रकार शिक्षा चेतना का ही संवर्धन है। हमारे धर्म ग्रन्थों में कहा गया है कि विद्या श्रद्धा के द्वारा ही प्राप्त होती है। गीता में भी कहा गया है - ''श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्''। श्रद्धा से ही ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय परंपरा में सरस्वती को विद्या की देवी का रूप देकर इस श्रद्धा के भाव को आध्यात्मिक रूप दे दिया है। सरस्वती का भाव रूप कला सहित विद्या का साकार रूप ही है। सरस्वती को हमारे भारत देश में माँ का स्थान दिया गया है। जिस प्रकार माँ अपने हृदय के रस से बालक का पोषण करती है। माँ सरस्वती विद्या एवं ज्ञान से हमारा पोषण करती है।

विद्या बौद्धिक साधना है। राग, द्वेष, क्रोध, अहंकार आदि मन के विकारों से बुद्धि आच्छादित हो जाती है, अर्थात् ज्ञान-शक्ति का नाश हो जाता है। गीता में कहा है - क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। (2/63) क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है। स्मृति के भ्रमित होने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने से व्यक्ति अपने श्रेय साधन से गिर जाता है।

विद्या की साधना की सफलता हेतु मन को इन विकारों से बचाये रखना परम आवश्यक है। इसीलिये प्राचीन भारतीय शिक्षा में ब्रह्मचर्य की महिमा थी। ब्रह्मचर्य कोई प्राचीन रूढ़ि नहीं है। वह संयम और साधना का सनातन मंत्र है। संयम और साधना की पीठिका पर ही ज्ञान की साधना होती है। ये सब अध्यात्म की अभिव्यक्ति के रूप हैं। इसी अध्यात्म के द्वारा उत्तम शिक्षा एवं श्रेष्ठ प्रतिभा का विकास संभव है। शिक्षा, विद्या, साहित्य, विज्ञान, कला आदि के क्षेत्रों में जिन महान पुरुषों ने कुछ श्रेष्ठ उपलब्धियाँ की हैं, उनको यह सफलता इसी साधना के आधार पर मिली हैं।

शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्य मनुष्य जीवन के उद्देश्यों से भिन्न नहीं हैं। शिक्षा एक प्रणाली है जिससे जीवन के उद्देश्य प्राप्त होते हैं। शिक्षा मानव की उन अन्तर्निहित शक्तियों, कुशलताओं एवं गुणों का विकास करती हैं जिनसे वह अपने जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल होता है। मानव जीवन का लक्ष्य है, ''धर्माचरण के द्वारा अर्थ और काम पुरुषार्थों की साधना करते हुए परम पुरुषार्थ 'मोक्ष' अर्थात् सत्, चित्त, आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति करना।'' भारतीय दृष्टि से विद्या प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य भी यही बताया गया है। ''सा विद्या या विमुक्तये''- विद्या वही है जो मोक्ष दिलाये। इस परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा भी आवश्यक मानी गयी है। ईशोपनिषद् में इसका उल्लेख है -

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्ययामृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

अन्धं तमः प्रवशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इ वते तमो य उ विद्यायां रताः।।

जो लोग विद्या (अध्यात्म विद्या या पराविद्या) और अविद्या (भौतिक विद्या अथवा अपराविद्या) दोनों को साथ-साथ जानते हैं, वे ही भौतिक विद्या के सहारे सुखपूर्वक इस मृत्युलोक (संसार) को पार करके अध्यात्म विद्या के सहारे अमृत या मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो लोग केवल अविद्या अर्थात् भौतिक शास्त्रों की उपासना करते हैं, वे अन्धकार में पड़े हुए हैं। किन्तु उनसे भी घने अन्धकार में वे लोग हैं जो संसार की चिन्ता न करके केवल अध्यात्म विद्या में लीन रहते हैं। अपरा विद्या के अन्तर्गत विज्ञान, साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र,कला, शिल्प आदि सांसारिक ज्ञान है। इस प्रकार भारतीय शिक्षा-दर्शन में आध्यात्मिक एवं भौतिक, दोनों प्रकार के ज्ञान का सामंजस्य है। डॉ. अल्तेकर ने प्राचीन भारत में शिक्षा के उद्देश्यों की गणना कराते हुए कहा है कि ''शिष्य को पवित्रता और धर्म की भावना, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक और सामाजिक कर्त्तव्य की भावना, सामाजिक समर्थता की समुन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति के विस्तार की दृष्टि से शिक्षा देनी चाहिए (अल्तेकर, 1958)।''

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के उद्देश्यों पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है - '' शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है जो जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हों।'' उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि ''हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बने, मानसिक वीर्य बढ़े, बुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके''।

श्री अरविन्द के अनुसार, ''बालक की प्रकृति में जो कुछ सर्वोत्तम, सर्वाधिक शक्तिशाली, सर्वाधिक अन्तरंग और जीवनपूर्ण है, उसको व्यक्त करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। बालक की सच्ची शिक्षा वही है जो कि उसके समस्त पक्षों का विकास करे। उसके जीवन, मस्तिष्क और आत्मा, व्यक्तिगत और सामाजिक स्थिति-सभी में उसके सर्वांगीण विकास में योगदान दे।'' श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक होते हुए भी कट्टर राष्ट्रवादी थे। वह यह मानते थे कि संसार में सर्वत्र मानव की आवश्यकताएँ समान

हैं तथा ज्ञान एवं सत्य किसी देश की सीमा में नहीं बाँधे जा सकते, किन्तु फिर भी प्रत्येक देश का अपना एक स्वधर्म होता है, एक स्वभाव होता है। उसी के अनुसार उसका विकास किया जाना चाहिए। श्री अरविन्द ने कहा है-''हम जिस शिक्षा की खोज में हैं वह एक भारतीय आत्मा और आवश्यकता तथा स्वभाव और संस्कृति के उपयुक्त शिक्षा है, केवल ऐसी शिक्षा नहीं जो भूतकाल के प्रति ही आस्था रखती हो, बल्कि भारत के विकासमान आत्मा के प्रति, उसकी भावी आवश्यकताओं के प्रति, उसकी आत्मोन्नति की महानता के प्रति और उसके शाश्वत आत्मा के प्रति आस्था रखती हो''।

शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य :- ''शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्''-शरीर समस्त धर्म का साधन है। हमारी ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति की भी अभिव्यक्ति का माध्यम शरीर है। स्वस्थ काया में स्वस्थ मन निवास करता है। जीवन के सुख के लिये स्वस्थ मन आवश्यक है। इस स्वस्थ मन के लिये शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। शरीर के स्वास्थ्य के लिये शारीरिक शिक्षा का महत्व सभी ने स्वीकार किया है। स्वामी विवेकानन्द ने शारीरिक बल पर अत्यधिक आग्रह किया है। उनके शब्दों में-''अनन्त शक्ति ही धर्म है। बल पुण्य है और दुर्बलता पाप। सभी पापों और सभी बुराइयों के लिये एक ही शब्द पर्याप्त है और वह है-दुर्बलता.....आज हमारे देश को जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद के स्नायु, दुर्दमनीय प्रचण्ड इच्छा शक्ति, जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो, फिर चाहे उसके लिये समुद्र तल में ही क्यों न जाना पड़े-साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़े। मेरे नवयुवक मित्रों! बलवान बनो। तुम को मेरी सलाह है। गीता के अभ्यास की अपेक्षा फुटबाल खेलने के द्वारा तुम स्वर्ग के अधिक निकट पहुँच जाओगे। तुम्हारी कलाई और भुजाएँ अधिक सुदृढ़ होने पर तुम गीता को अधिक अच्छी तरह समझोगे। तुम्हारे रक्त में शक्ति की मात्रा बढ़ने पर तुम श्रीकृष्ण की महान् प्रतिभा और अपार शक्ति को अच्छी तरह समझने लगोगे। तुम जब पैरों पर दृढ़ता के साथ खड़े होगे और तुमको जब प्रतीत होगा कि हम मनुष्य हैं, तब तुम उपनिषदों को और भी अच्छी तरह समझोगे और आत्मा की महिमा को जान सकोगे।''

भारतीय मनोविज्ञान में मानव की भौतिक काया को स्थूल शरीर कहा गया है। इस स्थूल शरीर के दो भाग हैं। स्थूल देह को अन्नमय कोश एवं दूसरे भाग को प्राणमय कोश कहा गया है। अतः शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत अन्नमय कोश और प्राणमय कोश - दोनों का विकास सम्मिलित है। सामान्य भाषा में अन्नमय कोश के विकास को शारीरिक विकास एवं प्राणमय कोश के विकास को संवेगात्मक विकास कहा जाता है। इस उद्देश्य को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत कर सकते हैं।

आज आवश्यकता है ऐसी शिक्षा-व्यवस्था की, जो जीविका के प्रयोजन को पूर्ण कर सके और शिक्षा के व्यापक उद्देश्य के साथ उसका समुचित समन्वय कर सके। राष्ट्र की समृद्धि एवं आर्थिक संपन्नता के लिये भी व्यावसायिक शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द ने प्रचलित शिक्षा की आलोचना करते हुए कहा है- ''आँख खोलकर देखा, जो भारत अन्न का अक्षय भण्डार रहा है, आज वहीं उसी अन्न के लिये कैसी करूण पुकार उठ रही है! क्या तुम्हारी शिक्षा इसकी पूर्ति करेगी?... हमें यान्त्रिक और ऐसी सभी शिक्षाओं की आवश्यकता है जिनसे उद्योग-धन्धों की वृद्धि और विकास हो, जिससे मनुष्य नौकरी के लिये

मारा-मारा फिरने के बदले अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त कमाई कर सके और आपातकाल के लिये संचय भी कर सके''।

व्यावसायिक शिक्षा का हमें समग्र राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में विचार करना होगा। प्रचलित शिक्षा-पद्धति देश में एक ऐसे अभिजात वर्ग का निर्माण कर रही है जो केवल बौद्धिक काम करना पसन्द करता है और हाथ में या शरीर में काम करना निम्न श्रेणी का मानता है। शारीरिक श्रम को हेय दृष्टि से देखा जाता है। परिणामतः वर्तमान शिक्षित समाज का जीवन बनावटी हो गया है। कम-से-कम श्रम करके अधिक-से-अधिक सुविधायें या भोग-सामग्री जुटा लेना उसके जीवन का मार्ग बन गया है। इस स्थिति को बदलने की आवश्यकता है। उत्पादक कार्य सर्जनात्मक एवं आत्माभिव्यक्ति के विकास का सर्वोत्तम साधन है। व्यावसायिक शिक्षा एक प्रकार की कला है। बालक अपने विचारों और भावों को इसके माध्यम से मूर्त रूप देता है। ज्ञान, भावना और क्रिया का इसमें सुन्दर समन्वय होता है। सृजन में आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है, जो कि कला का वास्तविक लक्ष्य है। इसके द्वारा बालक की कल्पना, निरीक्षण, विश्लेषण, संश्लेषण, तुलना, विभेदन आदि अनेक सूक्ष्म मानसिक शक्तियों का विकास होता है। इस प्रकार व्यावसायिक शिक्षा का उद्देश्य बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है।

मानसिक शिक्षा का उद्देश्य - मानसिक शिक्षा का सन्दर्भ मनोमय कोश एवं विज्ञानमय कोश से है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों सहित मत से युक्त मनोमय कोश क्रिया-प्रधान है। बुद्धि तत्व सहित विज्ञानमय कोश ज्ञान एवं विचार प्रधान है। भारतीय मनोविज्ञान में इन दोनों कोशों को अन्तःकरण की संज्ञा दी है जिसके मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार ये चार स्तर माने गये हैं। मानसिक शिक्षा के उद्देश्यों का दो मुख्य भागों में विचार कर सकते हैं- प्रथम, ज्ञानार्जन और द्वितीय, मानसिक शक्तियों एवं क्षमताओं का विकास करना है। मानसिक शक्तियाँ विकसित होने पर शिक्षा का ज्ञानार्जन का लक्ष्य सहज प्राप्त हो जाता है वास्तव में ज्ञानार्जन और मानसिक शक्तियों का विकास अन्योन्याश्रित हैं। मानसिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान के साथ विद्वता का विकास करना है। गीता में इसको 'ज्ञानं विज्ञान सहितम्' कहा है। ज्ञान चेतना का प्रकाश है, जिसे जाग्रत करना ही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है।

मानसिक विकास में एवं ज्ञानेन्द्रियों की संवेदनाओं को व्यवस्थित रीति से ग्रहण करने में मन की चंचलता सबसे बड़ी बाधा पहुँचाती है। योग दर्शन में आत्मज्ञान के लिये चित्तवृत्तियों के निरोध को प्रथम आवश्यकता माना है। शिक्षा के लिये भी मन की एकाग्रता परमावश्यक है। एकाग्रता की शक्ति जितनी अधिक होगी, ज्ञान की प्राप्ति भी उतनी अधिक होगी। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में - मैं तो मन की एकाग्रता को ही शिक्षा का यथार्थ सार समझता हूँ, ज्ञातव्य विषयों के संग्रह को नहीं। यदि मुझे एक बार फिर से अपनी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले तो मैं विषयों का अध्ययन नहीं करूँगा। मैं तो एकाग्रता की ओर मन को विषयों से अलग करने की शक्ति को बढ़ाऊँगा और तब साधन या यन्त्र की पूर्णता प्राप्त हो जाने पर इच्छानुसार विषयों का संग्रह करूँगा। स्वामी विवेकानन्द ने एकाग्रता एवं प्रबल बौद्धिक विकास के लिये ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक साधन माना है।

नैतिक शिक्षा का उद्देश्य - प्रायः सभी विचारकों एवं शिक्षाशास्त्रियों ने नैतिक शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना है। नैतिकता एक सामाजिक भावना है। चरित्र से तात्पर्य आचरण या व्यवहार से है। *नीयते इति नीतिः* अर्थात् जो आगे ले जाये, वह नीति है। मनुष्य को आगे या अभ्युदय की ओर ले जाने वाले उसके गुण होते हैं व नैतिक स्वभाव होता है। नैतिक शिक्षा हृदय की शिक्षा है। अतः परिपूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए नैतिक शिक्षा अपरिहार्य है। सामान्यतः मानव का व्यवहार उसकी मूल प्रवृत्तियों - आहार, निद्रा आदि इन्द्रिय-सुख की इच्छाओं से संचालित होता है। किन्तु शिक्षा या संस्कारों के द्वारा निम्न प्रवृत्तियों का रूपान्तरण एवं नियमन करना होता है, अन्यथा मानव और पशु में कोई अन्तर ही नहीं रहेगा। मानव-मानव में संघर्ष पर विजय एवं मानव की अन्तः प्रकृति पर विजय नैतिक शिक्षा के द्विविध उद्देश्य बन जाते हैं। अन्तःप्रकृति पर विजय मानव के हृदय में उदात्त भावनाओं एवं जीवनादर्श के प्रतिष्ठापन से होती है तथा मानव-मानव के संघर्ष पर विजय समान उदात्त जीवनादर्शों एवं समान जीवन की प्रेरणाओं की स्थापना से संभव होती है। इसी के आधार पर मानव पशु में मानवता का उदय एवं सामंजस्यपूर्ण मानव-समाज का विकास होता है और यही नैतिक शिक्षा का उद्देश्य है। इस उद्देश्य का विवेचन हम निम्नलिखित बिन्दुओं में कर सकते हैं-

धर्म एवं संस्कृति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना - भारतीय चिंतन में मनुष्य का धर्म है अपने हृदय में परमेश्वर की उपस्थिति की अनुभूति करना एवं प्रत्येक प्राणी में परमेश्वर का दर्शन करना। अन्तःकरण की निम्न प्रवृत्तियों के नियमन से एवं चित्त की शुद्धि से यह सम्भव होता है। नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत मानव-मन का यह प्रशिक्षण मुख्य कार्य है। इस दृष्टि से विकसित करने के लिये बालक को क्रियात्मक अवसर एवं बौद्धिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए। उक्त धर्म का व्यावहारिक रूप ही संस्कृति के रूप में विकसित हुआ है। भारतीय संस्कृति के आदर्शों, प्रतीकों एवं परम्पराओं के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा के स्थायी भावों का विकास बालक के मन में करना चाहिए। हमें छात्रों में बाल्यावस्था से ही अपने महान धर्म, उज्जवल संस्कृति एवं श्रेष्ठ परम्पराओं के प्रति ज्ञानयुक्त भक्तिभावना जाग्रत करनी चाहिए। इसके लिये विद्यालय का क्रियात्मक एवं संस्कारक्षम वातावरण अपेक्षित है। परिवारों में भी इसी प्रकार का वातावरण बालक को मिलना चाहिए। धर्म एवं संस्कृति के आदर्श बालक के जीवन में प्रस्थापित होंगे और उसे नैतिक बनने की प्रेरणा प्रदान करेंगे।

राष्ट्र-प्रेम की भावना जाग्रत करना - स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय चिन्तन में समाज या राष्ट्र को उस अव्यक्त ब्रह्म का विशाल एवं विराट व्यक्त रूप माना है, अतः अपने जीवन को इस राष्ट्ररूपी परमेश्वर की सेवा में पूर्णरूपेण समर्पित करना ही जीवन का चरम लक्ष्य कहा है। इसी में मानव-जीवन का सच्चा विकास निहित है। वास्तव में मनुष्य अपने अल्पत्व को नष्ट कर जितनी विशालता का अनुभव करेगा, उतना ही उसे सुख मिलेगा। राष्ट्र-प्रेम निःस्वार्थता का भावात्मक पर्याय है। 'स्व' के विकास की विशालतम व्यावहारिक परिधि राष्ट्र तक मानी गयी है जो सामान्य जन की पहुँच. के भीतर है। विश्व या चराचर जगत् की विशालतम परिधियाँ भी हैं, परन्तु वहाँ तक विरले जन ही विकास कर पाते हैं। भारतीय राष्ट्र-प्रेम इस उच्चतम विकास में सहायक है, बाधक नहीं, क्योंकि आध्यात्मिक भारतीय राष्ट्रवाद का लक्ष्य ही 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' है। समाज की उन्नति एवं राष्ट्र का उत्थान इस बात में निहित है कि जनमानस निःस्वार्थ भावना एवं राष्ट्र-प्रेम से ओतप्रोत हो। कुछ लोगों में राष्ट्र की या विश्व-प्रेम की भावना जाग्रत होने से राष्ट्र का

या मानव जाति का कल्याण नहीं होगा। अतः हमें शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक छात्र में स्वार्थभाव का रूपान्तरण राष्ट्र-प्रेम में करना है।

भारत की वर्तमान परिस्थिति में, जबकि देश में क्षुद्र राजनीति, क्षेत्रीयता, भाषावाद, साम्प्रदायिकता आदि संकीर्ण विचार सक्रिय है, राष्ट्रीय चेतना, देशभक्ति एवं एकात्मता की भावना का जागरण शिक्षा के माध्यम से होना समय की आवश्यकता है। मातृभूमि के प्रति भक्तिभाव, समाज के साथ एकात्मता की भावना, आसेतु हिमालय यह मेरा विशाल परिवार एवं घर है, भारत की सभी भाषाएँ मेरी भाषाएँ हैं, जाति, सम्प्रदाय पंथ, वेशभूषा, खान-पान, रीति-रिवाज आदि विभिन्नताओं के मध्य भारत एक राष्ट्र है, हमारी धमनियों में एक ही पूर्वजों का रक्त प्रवाहित हो रहा है, राष्ट्र का अपमान मेरा अपमान है, राष्ट्र का सम्मान मेरा सम्मान है, राष्ट्र के ऊपर आया किसी प्रकार का संकट मेरे ऊपर संकट है, इस प्रकार की राष्ट्रीय भावात्मक एकात्मता का विकास करना नैतिक शिक्षा का परम उद्देश्य है।

सद्गुणों का विकास करना - अपने धर्म एवं संस्कृति के प्रति ज्ञानयुक्त श्रद्धा और राष्ट्रभक्ति से प्रेरित व्यक्तियों में नैतिक आचरण की भूमि तैयार होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय जीवनादर्श छात्रों को नैतिक बनने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। हमें सदाचार एवं सद्गुणों का विकास छात्रों में मनोविज्ञान के आधार पर नैतिक शिक्षा के माध्यम से करना है। सदाचार या सच्चरित्रता के अन्तर्गत शील और नैतिकता की वे भावनाएँ निहित हैं जिनमें मनुष्य अपना सुख छोड़कर दूसरों को सुख दे, अपना स्वार्थ छोड़कर परोपकार करे और मन, वचन या कर्म से किसी को कष्ट न दे, सत्य बोलना, बड़ों का आदर करना, पारस्परिक प्रेम और सम्मान की भावना का विकास, त्याग, दया, न्याय, सहानुभूति, चोरी न करना, धोखा न देना, साहस, निर्भयता आदि सद्गुणों का विकास विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से किया जा सकता है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ मानता है कि नैतिक शिक्षा अथवा धर्म-शिक्षा का शिक्षण अन्य विषयों के समान एक विषय के रूप में करना उपयोगी एवं प्रभावकारी नहीं होता। सभी शिक्षकों को सभी विषयों के शिक्षण के साथ नैतिकता-विषयक बातों को छात्रों के सामने प्रस्तुत करना चाहिए। नैतिक शिक्षा के लिये विद्यालय का संस्कारक्षम वातावरण बहुत सहायक होता है।

आध्यात्मिक शिक्षा का उद्देश्य - भारतीय मनोविज्ञान की मान्यता के अनुसार मानव की मूल प्रकृति आध्यात्मिक है। इस आध्यात्मिक प्रकृति के कारण ही मनुष्य ने विज्ञान, साहित्य, संस्कृति, कला, सदाचार एवं धर्म के रूप में अपने को अभिव्यक्त किया है। अध्यात्म का सम्बन्ध आत्मा से है। आत्मा को जीवन और जगत् का परम तत्त्व माना गया है। वही जगत् का कारण है। उस चराचर जगत् में व्याप्त परमात्म तत्त्व को ही मनुष्य का अन्तरात्मा माना गया है। ''आत्मा को अधिकृत करके जो रहता है, उसे अध्यात्म कहते हैं। अपने भीतर आत्मा की उपस्थिति के प्रति सचेतन होने के लिये सर्वप्रथम आवश्यकता है देह और मन से जो तादात्म्य हमारे अहं ने स्थापित कर रखा है, उसे त्यागने का। हम यह अनुभव करें कि मैं यह 'देह' या 'मन' नहीं हूँ। मैं 'आत्मा' हूँ, जो अजर-अमर, अविनाशी सत्ता है। देह के नाश के साथ मेरा नाश नहीं होता। यह आत्मा ही ईश्वर तत्त्व है जो सर्व चराचर जगत् में व्याप्त है। अपने भीतर इस ईश्वर तत्व की अनुभूति करना तथा समस्त प्राणियों में इसके दर्शन करना, यही वास्तव में आध्यात्मिक शिक्षा की

आधारशिला है। आज भौतिकवादी सुखों ने मानव-मस्तिष्क को अपनी ओर पूर्ण रूप से आकृष्ट कर रखा है। फलस्वरूप, मानव आध्यात्मिक जीवन तथा उससे जुड़ी असीम सम्भावनाओं को पूरी तरह भुला बैठा है। वह भौतिक संसार में ही जीता तथा उपभोग करता है। अपनी सत्ता को शरीर और मन से अधिक नहीं मानता। यह एक ऐसी भ्रान्ति है जिसके रहते जीवन के उच्चस्तरीय आयामों में प्रवेश करते नहीं बनता। इस भ्रान्ति या अज्ञान से मुक्ति दिलाना ही शिक्षा का परम लक्ष्य है। 'सा विद्या या विमुक्तये'- विद्या वही है जो मुक्ति दिलाये। ईश्वर सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप हैं। इसके ज्ञान से ही निरन्तर आनन्द की प्राप्ति संभव है।भारतीय चिन्तन के अनुसार जीवन का लक्ष्य भी यही है। अध्यात्म जीवन का सत्य है। यह जीवन का दृष्टिकोण है। अध्यात्म जीवन जीना है। हमारा स्वभाव आध्यात्मिक बने, हमारे समस्त व्यवहार में आध्यात्मिकता प्रकट हो, यह सतत साधना का विषय है। शिक्षा भी एक साधना है। छात्रों के जीवन को अध्यात्म के संस्कारों से संस्कारित करना आध्यात्मिक शिक्षा का उद्देश्य है। इस प्रकार शारीरिक, व्यावसायिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक पंचमुखी शिक्षा के द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास होता है, जो कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है।

निष्कर्षतः यह मानना उचित ही है कि स्वामी विवेकानंद के शिक्षा विषयक विचारों में उनके महान आदर्शवादी दृष्टिकोण के साथ ही साथ, एक व्यावहारिक एवं यथार्थवादी स्वरूप की झलक दिखती है। उन्होंने वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा प्रणाली का ऐसा स्वरूप सामने रखा, जिसमें भारतीय संस्कारों एवं दृष्टिकोण के साथ–साथ वास्तविक आधुनिकता भी लक्षित होती है। उनके शिक्षा संबंधी विचार आज भी शिक्षा प्रणाली के सुधार के लिए मार्ग निर्देशक सिद्ध होते हैं।

संदर्भ सूची

1. भट, एस.ए. (2021). स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन का एक मूल्यांकनात्मक अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एड वांस्ड मल्टीडिसिप्लिनरी साइंटिफिक रिसर्च (आई.जे.ए.एम. एस.आर.), 4 (7), 1-111
2. चौहान, एस. के. एवं शर्मा, (डॉ.) वाई.पी. (2022). स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता, जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजी एंड इनोवेटिव रिसर्च, वॉल्यूम 9. इश्यू 8. पे. 52-561
3. गुप्ता, रा.बा. (1996). भारतीय शिक्षा शाखा, आगराः रतन प्रकाशन मंदिर।
4. मिश्रा, पी., और राणा, पीएस (2024). स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दर्शन और आधुनिक शैक्षिक प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययनः स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन और आधुनिक शिक्षा का परिचय। रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी, 9 (7), 23-271
5. मित्तल, एम.एल. (2008), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, मेरठः इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
6. पाण्डेय, (डॉ) रा० श० उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन।

7. साहा, एस., और सरकार, पी.एस. (2021), वेदांत और स्वामी विवेकानंद जीवन और उससे परे का अध्ययन। स्वामी जीः शानदार सूत्रधार और आदर्श दार्शनिक, 84।
8. सलैक्स, (डॉ), शी. में. (2008). शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिपेक्ष. नई दिल्लीः रजत प्रकाशन।
9. तड़ागी, (डी) एस. (2020). स्वामी विवेकानंद की दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारधारा, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव सोशल साइंस एंड ह्यूमैनिटीज रिसर्च, वॉल्यूम 7. इश्यू 4. पे. 42-481
10. विनय-भवन, वी.बी. (2024), 5वां अध्याय भारत में महिला शिक्षा और इसके बहुआयामी परिप्रेक्ष्य, 52.

भारत में इंडस्ट्री 4.0: नवाचार और विकास का युग

डॉ. मनीष कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, कंप्यूटर साइंस विभाग

श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

इंडस्ट्री 4.0 को औद्योगिक क्रांति के चार चरणों में सबसे उन्नत स्वरूप माना जाता है। यह क्रांति मुख्यतः कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), बिग डेटा, ब्लॉकचेन, और स्वचालन (Automation) जैसी उन्नत तकनीकों पर आधारित है। इसका प्राथमिक उद्देश्य उद्योगों को अधिक प्रभावी, उत्पादक और संसाधनों के बेहतर उपयोग में सक्षम बनाना है। भारत अपनी विशाल युवा जनसंख्या, समृद्ध ज्ञान परंपरा, और प्रगतिशील तकनीकी क्षमताओं के चलते इस वैश्विक क्रांति में एक प्रमुख भूमिका निभा रहा है।

इंडस्ट्री 4.0 उद्योगों के संचालन को आधुनिक तकनीकों के माध्यम से एक नई दिशा प्रदान कर रही है। यह क्रांति स्वचालन, डेटा का प्रभावी उपयोग, और उत्पादन प्रक्रिया के हर चरण में उच्च गुणवत्ता सुनिश्चित करने पर केंद्रित है। भारत के लिए यह तकनीकी बदलाव न केवल आर्थिक विकास को गति देने का साधन है, बल्कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा में एक अग्रणी स्थान हासिल करने का अवसर भी है। उदाहरण के तौर पर, कृषि, स्वास्थ्य, और विनिर्माण जैसे क्षेत्रों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) का उपयोग प्रक्रियाओं को स्वचालित और अधिक प्रभावी बना रहा है।

तकनीकी नवाचार में भारत की भूमिका

भारत में तकनीकी क्षमता का मुख्य आधार इसकी विशाल युवा जनसंख्या है। देश की 65% से अधिक आबादी 35 वर्ष से कम आयु की है, जो इसे विश्व का सबसे युवा राष्ट्र बनाती है। यह युवा जनसंख्या तकनीकी नवाचार और स्टार्टअप संस्कृति को तेजी से बढ़ावा दे रही है। वर्ष 2023 में भारत का स्टार्टअप इकोसिस्टम वैश्विक स्तर पर तीसरे स्थान पर था और 108 से अधिक यूनिकॉर्न स्टार्टअप्स का केंद्र था। इनमें से अधिकांश स्टार्टअप कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), ब्लॉकचेन, और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) जैसे क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। डिजिटल इंडिया और मेक इन इंडिया जैसे सरकारी प्रयासों ने तकनीकी प्रगति को सशक्त किया है, जिससे स्टार्टअप संस्कृति छोटे शहरों तक भी पहुंची है। साथ ही, भारत का AI बाजार 2024 तक $7.8 बिलियन तक पहुंचने का अनुमान है, जो इसे वैश्विक तकनीकी परिदृश्य में एक प्रमुख स्थान प्रदान करता है।

इंडस्ट्री 4.0 के माध्यम से भारत में कृषि का आधुनिकीकरण

भारत की अर्थव्यवस्था का लगभग 54% कृषि पर आधारित है, और इंडस्ट्री 4.0 ने इस क्षेत्र में बदलाव की एक नई लहर पैदा की है। आधुनिक तकनीकों जैसे ड्रोन, इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) सेंसर और बिग डेटा एनालिटिक्स का उपयोग कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। फसल की निगरानी में ड्रोन का उपयोग, मृदा स्वास्थ्य की जांच, और जल प्रबंधन प्रणालियाँ किसानों को सूचित और सटीक निर्णय लेने में सहायता कर रही हैं। वर्ष 2023 में भारत का कृषि ड्रोन बाजार वैश्विक स्तर पर 25% हिस्सेदारी के साथ उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज कर रहा था। पीएम किसान ड्रोन योजना के तहत सरकार ने छोटे और मध्यम वर्ग के किसानों को उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों तक पहुंचाने में मदद की है। साथ ही IoT आधारित सेंसर का उपयोग नमी, तापमान और पोषण स्तर की निगरानी के लिए किया जा रहा है, जिससे पानी और उर्वरकों का प्रभावी और कुशल उपयोग सुनिश्चित हो रहा है। इंडस्ट्री 4.0 की इन तकनीकों ने न केवल कृषि लागतों में कमी की है बल्कि उत्पादन क्षमता में वृद्धि कर भारत को आत्मनिर्भर कृषि अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर किया है।

भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र में इंडस्ट्री 4.0 की भूमिका

इंडस्ट्री 4.0 ने भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र को तकनीकी प्रगति और नवाचार के माध्यम से नए आयाम प्रदान किए हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) आधारित हेल्थ मॉनिटरिंग सिस्टम ने व्यक्तिगत स्वास्थ्य प्रबंधन को प्रभावी और किफायती बनाया है। AI के माध्यम से तेजी से और सटीक रोग निदान संभव हुआ है, जबकि IoT उपकरण जैसे स्मार्ट बैंड और ग्लूकोज मॉनिटर मरीजों को वास्तविक समय में स्वास्थ्य डेटा ट्रैक करने की सुविधा प्रदान करते हैं। टेलीमेडिसिन ने ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच में क्रांति ला दी है। वर्ष 2023 तक भारत में टेलीमेडिसिन उपयोगकर्ताओं की संख्या 70 मिलियन तक पहुंच गई थी। COVID-19 महामारी के दौरान AI आधारित ट्रेसिंग, संपर्क ट्रैकिंग और संक्रमण पूर्वानुमान उपकरणों ने संक्रमण की गति को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अतिरिक्त रोबोटिक्स और ऑटोमेशन ने अस्पतालों में दवाओं के वितरण और मरीजों की देखभाल को अधिक कुशल बना दिया है। सरकारी योजनाओं जैसे 'आयुष्मान भारत डिजिटल मिशन' ने डिजिटल स्वास्थ्य रिकॉर्ड्स और AI-संचालित स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ावा देकर भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र को सशक्त बनाया है।

भारत में इंडस्ट्री 4.0 के लिए सरकारी नीतियाँ

भारत सरकार ने इंडस्ट्री 4.0 को बढ़ावा देने के लिए कई महत्वपूर्ण योजनाएँ और नीतियाँ बनाई हैं, जो तकनीकी नवाचार और डिजिटल बुनियादी ढांचे को मजबूती प्रदान करती हैं। डिजिटल इंडिया अभियान के अंतर्गत देश में इंटरनेट कनेक्टिविटी में तेजी से वृद्धि हुई, जिससे वर्ष 2023 तक 80 करोड़ इंटरनेट उपयोगकर्ताओं का एक मजबूत नेटवर्क स्थापित हुआ। 5G नेटवर्क का विस्तार, IoT, स्मार्ट कृषि, और स्मार्ट सिटी परियोजनाओं को नई दिशा प्रदान कर रहा है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) के तहत 1.5 करोड़ से अधिक युवाओं को AI, रोबोटिक्स, और डेटा एनालिटिक्स जैसे उन्नत तकनीकी क्षेत्रों में प्रशिक्षित किया गया है। राष्ट्रीय AI मिशन (2020) ने AI आधारित शोध, स्टार्टअप्स और उद्योगों को बढ़ावा दिया है, जिससे भारत 2024 तक

AI बाजार में $7.8 बिलियन की हिस्सेदारी हासिल करने की ओर बढ़ रहा है। इसके अतिरिक्त, मेक इन इंडिया और आत्मनिर्भर भारत जैसे अभियानों ने घरेलू उत्पादों के निर्माण और वैश्विक निर्यात को प्रोत्साहित किया है। भारतनेट परियोजना ने देश के 6 लाख से अधिक गाँवों को ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी से जोड़ा है, जिससे डिजिटल सेवाओं की उपलब्धता और सशक्त हुई है। इन सभी नीतियों ने भारत को तकनीकी प्रगति की दिशा में अग्रसर किया है और इंडस्ट्री 4.0 में वैश्विक नेतृत्व के लिए तैयार किया है।

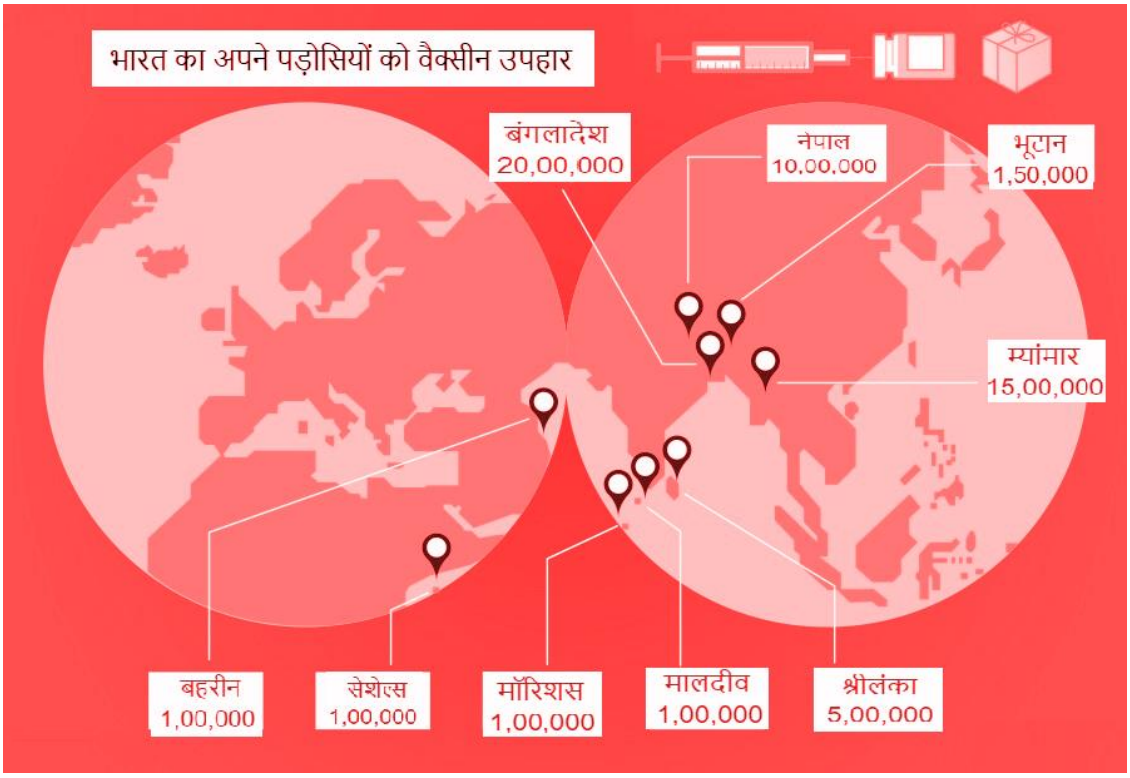

कोविड महामारी पर काबू पाने में भारत का योगदान और इंडस्ट्री 4.0 का प्रभाव: क्षेत्रीय सहयोग को मजबूती देने की दिशा में

(सौजन्य: एम. इ. ए)

इंडस्ट्री 4.0 में भारत की चुनौतियां और उनके समाधान

भारत में इंडस्ट्री 4.0 को लागू करने में कई प्रमुख चुनौतियाँ सामने आ रही हैं, लेकिन इनका समाधान निकालने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम भी उठाए जा रहे हैं। सबसे बड़ी चुनौती तकनीकी शिक्षा की कमी है, क्योंकि देश की बड़ी आबादी को उन्नत तकनीकों जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), रोबोटिक्स, और डेटा विज्ञान के बारे में सीमित जानकारी है। इस समस्या को दूर करने के लिए नई शिक्षा नीति (NEP) 2020 में इन तकनीकी विषयों को विद्यालय और उच्च शिक्षा स्तर पर पाठ्यक्रमों में शामिल किया गया है। इसके अलावा, साइबर सुरक्षा भी एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है, क्योंकि डेटा उल्लंघन और गोपनीयता के मामलों में वृद्धि हो रही है। इसे लेकर ब्लॉकचेन और एन्क्रिप्शन जैसी तकनीकों का उपयोग सुरक्षा उपायों को मजबूत करने के लिए किया जा रहा है। लघु और मध्यम उद्योगों (MSMEs) के लिए उन्नत तकनीकों को अपनाना महंगा और जटिल हो सकता है, लेकिन सरकार ने इन उद्योगों के

डिजिटलीकरण के लिए 'मेक इन इंडिया' और 'आत्मनिर्भर भारत' जैसे अभियानों के तहत विशेष योजनाएं लागू की हैं। इसके अलावा, उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए सस्ते ऋण और तकनीकी प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जा रहे हैं। ग्रामीण और दूरस्थ इलाकों में डिजिटल कनेक्टिविटी की कमी को दूर करने के लिए भारतनेट जैसी परियोजनाएं चल रही हैं, जो इन क्षेत्रों में ब्रॉडबैंड इंटरनेट कनेक्टिविटी प्रदान करती हैं। इन उपायों के माध्यम से भारत इंडस्ट्री 4.0 के साथ अपनी विकास यात्रा को और अधिक सशक्त बना रहा है।

इंडस्ट्री 4.0 के तहत भारत में नवाचार और आगामी संभावनाएँ

भारत में स्वदेशी तकनीकी विकास और नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए जा रहे हैं। ISRO और DRDO जैसी प्रमुख संस्थाएँ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), और रोबोटिक्स पर आधारित उन्नत समाधानों को विकसित कर रही हैं, जो राष्ट्रीय सुरक्षा, अंतरिक्ष अनुसंधान, और औद्योगिक स्वचालन के क्षेत्रों में नए मानक स्थापित कर रही हैं। भारत का लक्ष्य है कि 2030 तक अपनी ऊर्जा जरूरतों का 50% नवीकरणीय स्रोतों, जैसे सौर और पवन ऊर्जा, से पूरा किया जाए, जिसमें इंडस्ट्री 4.0 की तकनीकों का अहम योगदान होगा। स्मार्ट ग्रिड और IoT आधारित ऊर्जा प्रबंधन प्रणालियाँ नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग को और अधिक प्रभावी और कुशल बना रही हैं। साथ ही, राष्ट्रीय स्टार्टअप मिशन और मेक इन इंडिया जैसी पहलों ने देश में नवाचार के इकोसिस्टम को सशक्त किया है, जिसके परिणामस्वरूप 2023 तक 100 से अधिक यूनिकॉर्न स्टार्टअप सामने आए हैं। 5G, क्वांटम कंप्यूटिंग, और बायोइंजीनियरिंग जैसे क्षेत्रों में शोध और निवेश भारत को तकनीकी महाशक्ति बनने के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ा रहे हैं। इस नवाचार-आधारित दृष्टिकोण से भारत न केवल इंडस्ट्री 4.0 में वैश्विक नेतृत्व की ओर बढ़ेगा, बल्कि आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना भी साकार होगी।

निष्कर्ष

इंडस्ट्री 4.0 केवल एक तकनीकी क्रांति नहीं, बल्कि यह भारत के आर्थिक और सामाजिक बदलाव के लिए एक महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति बन रही है। अपनी युवा जनसंख्या, तेजी से बढ़ते तकनीकी नवाचार, और मजबूत नीतिगत समर्थन के साथ, भारत इस वैश्विक परिवर्तन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हालांकि, तकनीकी शिक्षा की कमी, साइबर सुरक्षा, और MSMEs की चुनौतियां बनी हुई हैं, लेकिन इन समस्याओं के समाधान हेतु उठाए गए कदम भारत को इस क्रांति के लाभ को पूरी तरह से प्राप्त करने में सहायता कर रहे हैं। इंडस्ट्री 4.0 को अपनाते हुए, भारत एक सक्षम, प्रभावी और स्थिर अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है। इस नई युग में भारत का लक्ष्य सिर्फ तकनीकी अनुसरण करना नहीं, बल्कि वैश्विक मंच पर नेतृत्व स्थापित करना है। यदि वर्तमान दिशा में सही प्रयास जारी रहे, तो भारत आने वाले दशकों में इंडस्ट्री 4.0 के क्षेत्र में वैश्विक नेता बनेगा और अपनी आर्थिक शक्ति को और सशक्त बनाएगा।

सन्दर्भ सूचि:

[1]. डिजिटल इंडिया पोर्टल, "डिजिटल इंडिया का प्रभाव और तकनीकी क्रांति", डिजिटल इंडिया पोर्टल, भारत सरकार, 2023 ऑनलाइन उपलब्ध

[2]. रजनीश गुप्ता, "आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस: भारत के उद्योग में परिवर्तन", *तकनीकी और नवाचार शोध पत्रिका*, खंड 12, अंक 4, पृष्ठ 25-32, 2023

[3]. सीमा सिंह, "स्मार्ट कृषि और भारतीय कृषि में इंडस्ट्री 4.0 की भूमिका", *भारतीय कृषि अनुसंधान जर्नल*, खंड 8, अंक 2, पृष्ठ 58-66, 2023

[4]. श्रुति मेहता, "स्वास्थ्य तकनीकी और इंडस्ट्री 4.0: भारतीय संदर्भ", *हेल्थकेयर टेक्नोलॉजी जर्नल*, खंड 10, अंक 3, पृष्ठ 45-52, 2022

[5]. प्रेस इंफॉर्मेशन ब्यूरो (PIB), "आयुष्मान भारत डिजिटल मिशन", प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार, 2023। ऑनलाइन उपलब्ध

[6]. अरुण प्रकाश, "भारत की औद्योगिक क्रांति: नीति और संभावनाएं", *नीति और विकास जर्नल*, खंड 14, अंक 6, पृष्ठ 75-83, 2023

[7]. कविता मिश्रा, "इंडस्ट्री 4.0 की चुनौतियां और भारत का उत्तरदायित्व", *भारतीय आर्थिक नीति समीक्षा*, खंड 9, अंक 5, पृष्ठ 67-74, 2022

[8]. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP), "भारतीय शिक्षा और तकनीकी उन्नति", भारत सरकार, नई दिल्ली, 2020

पुस्तक समीक्षा

ISSN: 2583-391X

Book Review: India, Bharat and Pakistan: The Constitutional Journey of a Sandwiched Civilisation by J. Sai Deepak

Deepak Singh
Research Scholar,
Chaudhary Charan Singh University,
Meerut

The book gives a broad and well-researched look at the political, religious, and constitutional changes that took place in Bharat from the middle of the 18th century to the beginning of the 20th century. It is framed through the lens of what the author terms “Middle Eastern coloniality,” a long-standing civilizational current that, in the author’s view, sought to re-establish Islamic political supremacy in the subcontinent. Instead of seeing the creation of Pakistan as a sudden result of political deals made in the 20th century, the author sees it as the end of a process that has been going on for hundreds of years and is based on ideological revivalism, pan-Islamic mobilizations, and a constant search for the return of Dar al-Islam. The book rejects an Anglocentric framework that explains communal divisions purely as British inventions, arguing instead that these fissures had deep indigenous origins that the colonial state learned to exploit. The author asserts that conventional historical narratives frequently "secularize" or minimize the overtly religious motivations of diverse movements. They advocate for a decolonial perspective that opposes the perceived postcolonial sanitization of politically inconvenient truths.

The first few chapters look at the intellectual history of Islamic revivalism in the subcontinent. People like Syed Ahmad Sirhindi are shown as important figures in rejecting the mixing of religions and insisting on strict adherence to the Sharia. They frame their project as one of getting rid of Hindu cultural influence and bringing Islam back to its "most pristine form." Shah Waliullah Dehlawi is then portrayed as a pivotal synthesizer of preceding revivalist ideologies, offering a systematic elucidation of jihad not only as a spiritual practice but also as a political imperative for the establishment of Islamic governance. This doctrinal base is seen as a direct intellectual ancestor of the Wahhabi movement that started in the 1800s. The author establishes

a distinct continuity between these intellectuals and the aggressive initiatives of subsequent revivalists, dismissing interpretations that regard each as a separate historical occurrence.

The Wahhabi movement itself has been explored in great detail, including how it spread in Bengal and the northwest, how it fought with both Sikh and British authorities, and how it organized itself. The text challenges nationalist depictions of the Wahhabis as proto-independence fighters, emphasizing that their aim was not a collective emancipation from colonial domination but the reinstatement of Muslim sovereignty. The British didn't think the threat was as big as it was at first, but the growing network of revivalist activists, preachers, and fighters eventually led to more coordinated surveillance and countermeasures. The addition of Section 124A (Sedition) to the Indian Penal Code in 1870 is seen here as a specific legal tool meant to stop Wahhabi preaching, fundraising, and recruitment. This history is still relevant to current discussions about sedition law in India.

Starting in the middle of the 1800s, the author names a group of ideological successors to the Wahhabis. These include the Ahl-i-Hadith, the Deobandi and Barelvi schools, the Nadwah reformers, and the Aligarh movement. It is said that they all took something from the intellectual legacy of Dehlawi's school, but to different degrees. Even reformers like Syed Ahmed Khan, who are often praised for bringing Western education to Indian Muslims, are shown here as putting revivalist goals into the modern language of the nation-state, which is an early version of the Two-Nation Theory. The author contends that Khan's political philosophy consistently highlighted the uniqueness of Muslims as a political entity, their historical legacy of governance, and their unsuitability for a system that equated them politically with Hindus.

One of the most detailed parts of the book is about the 1905 Partition of Bengal. The author agrees with Lord Curzon's reasons for his actions in terms of administration and economics, but they also stress the importance of recognizing the role of pre-existing Muslim separatist sentiment and increased Islamic consciousness. Some people say that the British took advantage of these feelings to make Eastern Bengal and Assam a Muslim-majority province, which they used to balance out the growing nationalist movement in Bengal. Muslim leaders like Nawab Salimullah were happy about the partition and openly celebrated it. Hindu leaders, on the other hand, started the Swadeshi and Boycott movements to fight against it. The 1906 Simla Deputation, in which Muslim leaders officially asked for separate electorates, is seen as

a turning point in the constitutional structure that made communal representation a permanent part of it. The All-India Muslim League was formed later that year, and this is seen as the institutionalization of this separatist politics.

The book also talks about the divisions within the Indian National Congress at the same time as the consolidation of Muslim politics. The 1907 Surat split was the result of a growing ideological divide between Moderates, who wanted gradual reform within the British imperial system, and Extremists, who wanted Swaraj and pushed for self-reliance. The story implies that the British were good at taking advantage of these splits by supporting the Muslim League as a loyalist counterbalance to more radical nationalist demands. People see the Morley-Minto Reforms of 1909 less as a step toward democracy and more as a way to make separate electorates official, which supports the idea of the Two-Nation Theory long before it became official policy in the 1940s.

The years 1910 to 1924 are seen as a time when pan-Islamism, constitutional politics, and anti-colonial nationalism came together in complicated and often contradictory ways. Hindu nationalists were happy when the Partition of Bengal was canceled in 1911, but many Muslim leaders were upset and became more involved in global Islamic causes, especially the fate of the Ottoman Caliphate. The Lucknow Pact of 1916 is shown as a brief and difficult time of cooperation between the Congress and the League. This was possible because the Congress agreed to the League's demands for separate electorates. This partnership didn't last long because the Khilafat Movement after the war changed the political scene. The author critically analyzes the Khilafat era, presenting it as the most comprehensive manifestation of the intersection between global pan-Islamism and Indian Muslim politics. Gandhi's choice to link the Congress's Non-Cooperation Movement to the Khilafat cause is seen as a strategic mistake that put religious goals ahead of nationalist ones. The book emphasizes that this alliance not only did not bring about Swaraj, but also led to violent communal flashpoints, exemplified by the Moplah rebellion in Malabar, which the author characterizes as a religiously motivated massacre rather than a class-based peasant uprising. The Kohat riots and Malegaon disturbances are two more examples of the Two-Nation Theory "in practice," showing how deep the animosity between communities was at the time.

One of the most interesting things about the book is how it connects ideas and political events over a long period of time. The author sees a constant thread running from Sirhindi's anti-

syncretic theology, through Dehlawi's political jihadism, to the calls for separate electorates in the 20th century, and finally to Partition. This continuity is not merely a loose analogy, it is a demonstrable chain of influence substantiated by speeches, writings, and organizational histories. This kind of framing goes against the common practice of putting early modern religious movements and late colonial politics into separate analytical boxes.

The strength of the work comes from how deeply it engages with archives and how it doesn't take traditional nationalist stories at face value. By including official letters, legislative records, and speeches from the time, the author lets historical figures speak for themselves and makes the ideological stakes clear. The incorporation of global contexts enhances the narrative, emphasizing that political Islam in India was not merely a localized occurrence but rather an element of a broader civilizational movement.

By tracing the origins of the Two-Nation Theory to a period preceding the twentieth century, it necessitates a re-evaluation of the interpretation of India's constitutional history, especially concerning minority rights, secularism, and communal representation. Its examination of sedition laws and distinct electorates aligns with contemporary legal and political discourses, while its focus on the influence of education and language in shaping political awareness directly addresses current controversies regarding curriculum and cultural policy.

Hence, this book is both a historical account and a way to change the way people talk about things today. It is not a neutral account of history but rather a work of engaged history that contends the seeds of Partition were planted centuries prior to the formal political negotiations of the 1940s. It provides a rich and difficult look at the ideological, political, and religious forces that have shaped modern India for scholars and readers who are willing to engage with its interesting framing.

विविधा

ISSN: 2583-391X

बांध कर इतना मुसाफिर

भावना शर्मा

Independent Poet,

YouTube:- Akshmaa

बांध कर इतना मुसाफिर

खुद को कैसे जी सकेंगे

विष हुआ या कोई अमृत

कैसे ही हम पी सकेंगे

भूलकर अच्छा बुरा सब

फिक्र सारी छोड़ दी हैं

मैं परखती हूं भला कब

पायलें सब तोड़ दी हैं

अब नहीं आंगन की सीमा

ना कोई चितवन में रेखा

जा नजर के साथ मेरे पग

जिस दिशा को मैने देखा

भूलकर की कल क्या होगा

भूलकर क्या हो गया कल

इतने पैमानों के संग में

भाव ना सब सी सकेंगे

बांधकर इतना मुसाफिर

खुद को कैसे जी सकेंगे !!

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ 11 ॥
ईशावास्योपनिषद्

अर्थात जो विद्या और अविद्या – इन दोनों को ही एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र समुद्रमंथन के सामान ज्ञान मंथन का वह सागर है जहाँ विष रूपी अज्ञान को दूर कर अमृत रूपी ज्ञान संचार होता है।

समाज के प्रत्येक वर्ग के बुद्धिजीवी जैसे शिक्षाविद, प्राध्यापक, शोधार्थी, प्रशासक, उद्यमी, व्यवसायी, पत्रकार, लेखक, चिन्तक, प्रबुद्ध जन इस ज्ञान मंथन रूपी महासागर में वासुकी रूपी बुद्धि द्वारा विभिन्न विषयों के मंथन से समाज को नवीन दिशा प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं।

इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र में जहाँ अध्ययन की सतत प्रक्रिया गतिमान रहती है, वहीं जीवंत सोच, सकारात्मक ऊर्जा और सक्रियता भी अखंड रूप से प्रवाहित रहती है। अध्ययन केंद्र शोध की वह प्रयोगशाला है जहाँ समाज में फैले वैचारिक संभ्रमों को तार्किकता और वैज्ञानिकता की कसौटी पर परख कर सत्यता का बोध व दर्शन किया जाता है। समाज से जुड़ा प्रत्येक वर्ग ज्ञान पिपासु भी स्व और स्वत्व के विषयों जैसे सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व मानसिक द्वंद्वों को दूर कर नई चेतना का प्रवास अध्ययन केंद्र में पाता है।

इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र न केवल समाज में फैले संभ्रम को शोध की प्रयोगशाला में दूर करने का प्रयास कर रहा है अपितु समाज के जागृति हेतु तात्कालिक विषयों पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, व्याख्यान, प्रेरक संवाद और कार्यशाला भी आयोजित करता रहता है।

इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र सदैव समाज में रहने वाले प्रबुद्ध एवं सक्रिय जनों की भागीदारी की अपेक्षा रखता है तथा भारत विश्वगुरु बने इस पावन विचार को लेकर चलायमान रहता है। सभी भारतवासियों से यही आग्रह है की इस पवित्र अश्वमेध रूपी अध्ययन केंद्र से जुड़कर भारत को विश्वगुरु बनाने में हेतु अपनी महत्वपूर्ण योगदान दें।

मूल्य : ₹ 100/-

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

कार्यालय :-

ए -1 / 7, श्रीराम कुटीर, द्वितीय तल, चाणक्य प्लेस,
पंखा रोड, नई दिल्ली -110059
ईमेल :- ipss..ipak@gmail.com
सचल दूरभाष :- 9811149925, 9868084938